शोध सरोवर पत्रिका

आरती, वषुतक्काटु, तिरुवनंतपुरम-695 014, केरल राज्य।

RNI No. KERHIN/2017/70008 ISSN No.2456-625 X

वर्ष 10 अंक 39

त्रैमासिक हिन्दी शोध पत्रिका 10 जुलाई, 2026

पीयर रिव्यू समिति :

प्रो.(डॉ.) शांति नायर

प्रो (डॉ.) श्रीलता के

प्रो.(डॉ.) बी.अशोक

मुख्य संपादक
डॉ.पी.लता

प्रबंध संपादक
डॉ.एस.तंकमणि अम्मा

सह संपादक
प्रो.सती के
डॉ.एस.लीलाकुमारी अम्मा
श्रीमती वनजा पी

संपादक मंडल
डॉ.बिन्दु सी.आर
डॉ.षीना यू.एस
डॉ.सुमा ऐ
डॉ.एलिसबत जोर्ज
डॉ.लक्ष्मी एस.एस
डॉ.धन्या एल
डॉ.कमलानाथ एन.एम
डॉ.अश्वती जी.आर

सूचना: लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

इस अंक में

संपादकीय			
स्त्री अस्मिता और भाषा का संघर्ष	:	डॉ. रवि कुमार	04
राम-काव्य में पर्यावरण संरक्षण	:	डॉ. साधना गुप्ता	09
वृद्धजीवन की समस्याओं पर एक विहंगात्मक दृष्टि और रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य	:	कु॰ मोनिका देवी डॉ.सुनील कुमार	12
पारम्परिक प्रतिमानों को तोड़ती कविताएँ: 'सात भाइयों के बीच चम्पा'	:	सृष्टि सिंह	15
सामाजिक बोध :दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय व सूरजपाल चौहान जी की नज़रों में	:	सुधा जे	20
थोरो की एक समृद्ध राज्य की दृष्टि : आधुनिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार	:	डॉ.सुशांत कुमार दुबे	23
रामकाव्य भक्ति परंपरा में मुस्लिमों का योगदान	:	दीपेन्द्र कुमार प्रो. गंगाधर वानोडे प्रो. टी. कमलाबती देवी	26
हिन्दी के वैश्विक प्रसार में वैश्वीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद की भूमिका	:	आकाश शंकर	30
उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक निर्णय क्षमता में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग :संभावनाएँ और सीमाएँ	:	कृष्णा नेगी प्रो.अनिल कुमार नौटियाल वंदना शर्मा	34
भारतीय संस्कृति, परंपरा और लोक नाट्य	:	आरती	39
हिंदी कविता और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस: 'मानव आत्मा' बनाम 'मशीन आत्मा'	:	अर्शदीप कौर	43
विज्ञापन की दुनिया में 'एक ज़मीन अपनी'	:	डॉ. रंजी कोशी	48

लेखकों से निवेदन

भाषा, साहित्य, समाज एवं संस्कृति पर लिखी गयी स्तरीय मैलिकतथा अप्रकाशित रचनाएँ भेजें। प्राकशनार्थ अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखकों से प्राप्त सहमति पत्र भी भेजें। रचनाएँ हिंदी यूनिकोड मंगल फॉन्ट में टंकित होनी चाहिए। लेख के प्रारंभ में लेख का सार अपेक्षित है जो अधिकतम 150 से 200 शब्दों के मध्य हो। सार में लेख लिखने का उद्देश्य अवश्य परिलक्षित होना चाहिए। आलेख के अनुरूप 5 से 7 तक 'की वर्ड' (बीज शब्द) भी लिखें। लेख को यथोचित उपशीर्षकों में विभाजित करके लिखें। लेख के अंत में निष्कर्ष अवश्य दें। शब्द-सीमा 2500 से 3000 शब्दों की हो। आलेख के अंत में संदर्भ ग्रंथों की सूची ए.पी.ए. के प्रारूप में हो। लेख भेजते समय अपने नाम, पता, फोन नंबर एवं लेख का शीर्षक ई-मेल में अवश्य लिखें। इस आशय का एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत कर दें कि लेख मौलिक है, अप्रकाशित है, भविष्य में इससे संबंधित किसी भी विवाद के लिए लेखक उत्तरदायी होंगे।

रचना के अंत में पूरा डाक पता, मोबाइल नंबर और ई-मेल पता अंकित करें। संक्षिप्त जीवन-परिचय और फोटो भी भेजें।

डॉ.पी.लता
संपादक
शोध सरोवर पत्रिका

मूल्य : एक प्रति रु.100/-

वार्षिक शुल्क रु.400/-

पत्रिका के संबंध में अधिक जानकारी केलिए संपर्क करें - डॉ.पी.लता (संपादक, शोध सरोवर पत्रिका; मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी), आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफीस लेन, ई-28, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम - 695 014, केरल राज्य।

फोन :9946679280, 9946253648

ई-मेल : akhilbharatheeyhindiacademy@gmail.com

संपादकीय

युद्ध विनाशकारी है

युद्ध मानव राशी का सबसे बड़े दुरंत ही है। वह भयकारक है, जानलेवा भी। परिणाम क्या होगा, इस विचार से लोग तनावग्रस्त रहते हैं। अशांति फैल जाती है। स्वजनों के साथ जायदाद भी नष्ट होकर कई व्यक्ति अशरण बनते हैं। गरीबी की हालत आती है। अनंतर पीढ़ियों को भी इसका बुरा असर भोगना पड़ता है।

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-18) तथा दूसरा विश्वयुद्ध (1939-45) बड़े विनाशकारी रहे। इन युद्धों में कितने ही सैनिकों-नागरिकों की जान नष्ट हुई। आर्थिक नुकसान से विश्व की अर्थ-व्यवस्था भी अस्तव्यस्त हुई।

बँटवारे के बाद स्वतंत्र भारत पर हुए पाकिस्तान के हमले और उन हमलों में उद्भूत नरसंहार और नुकसान हमारे अनुभूत सत्य हैं। 'धरती का स्वर्ग' कहे जानेवाले प्रकृति रमणीय सीमा प्रांत कश्मीर पर कब्जा करने के पाकिस्तान के प्रयासों को भारत ने परास्त किया। कश्मीर विवाद और सीमा पार आतंकवाद भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष के प्रमुख कारण हैं। भारत और पाकिस्तान के बीच 1947, 1965, 1971 और 1999 में युद्ध हुए।

1971 का युद्ध पाकिस्तान के अत्याचारों और बंगला देश (उस समय का पूर्वी पाकिस्तान) की स्वतंत्रता की माँग के कारणों से हुआ। इस युद्ध में पाकिस्तान की पराजय हुई और एक नया देश-बंगला देश अस्तित्व में आया। 1999 का युद्ध पाकिस्तानी सैनिकों-आतंकवादियों द्वारा सर्दियों के मौसम में वियंत्रण नियंत्रण रेखा पार कर जम्मू-कश्मीर के कारगिल जिले में- वर्तमान लद्दाख, केन्द्र शासित प्रदेश- में कब्ज़ा (घुसपैठ) करने के पाकिस्तान की कोशिश के कारण हुआ। यह युद्ध कारगिल युद्ध, ओपरेशन विजय आदि नामों से जाना जाता है। यह युद्ध 3 मई 1999 से 26 जुलाई 1999 तक था। 86 दिनों तक चले इस युद्ध का विजय दिवस 26 जुलाई था, अतः हर साल यह दिवस पाकिस्तान पर भारत की विजय के प्रतीक स्वरूप तथा इस युद्ध में भारतीय सैनिकों के बलिदान के स्मरणार्थ 'कारगिल विजय दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इस युद्ध में भारतीय सेना ने लद्दाख के कारगिल में अपने उस क्षेत्र को प्राप्त किया, जिसे पाकिस्तानी सेना ने धोखे से अधिकार में लिया था।

इस संदर्भ में 'ओपरेशन सिंदूर' पर लिखना समीचीन होगा। यह भारत का वह सैनिक अभियान है, जो भारत द्वारा पाकिस्तान के सैनिक केन्द्रों पर 2025 में चलाया गया। भारत द्वारा 6-7 मई 2025 की रात को पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में आतंकवाद के खिलाफ किया गया हवाई सैनिक अभियान का कूटनाम है 'ओपरेशन सिंदूर'। 22 अप्रैल 2025 को कश्मीर के पहलगाम के बेसरन घाटी में पाकिस्तानी आतंकियों के भीषण हमले में 25 भारतीय पर्यटक एवं एक नेपाली पर्यटक मारे गए। पर्यटकों की जान बचाने की कोशिश में एक स्थानीय टूरिस्ट गइड भी शहीद हो गया। इस हमले में निर्दोष पुरुषों को धर्म के आधार पर निशान बनाया। भारत सरकार ने इस हमले के खिलाफ सख्त कार्रवाई की, वही 'ओपरेशन सिंदूर' है। यह कूटनाम इसलिए कि पहलगाम के आतंकी हमले में कई सुहागिन स्त्रियों की माँग का सिंदूर उजड़ गया था, यानी वे स्त्रियाँ विधवाएँ हो गई थीं।

विवादित क्षेत्रों में पूर्वी एशीया में स्थित कोरियाई प्रायद्वीप भी शामिल है। भौगोलिक दृष्टि से कोरिया कहा जानेवाला भू-भाग अब दो राजनीतिक हिस्सों में बाँटा गया है, उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया। इन दोनों हिस्सों के बीच शत्रुता है, ताकि सीमा में संघर्ष होता है।

अगला एक युद्ध है ईरान-इज़राइल का। इज़राइल ईरान को अपने अस्तित्व को खतरा मानता है। जून 2025 में 12 दिवसीय युद्ध हुआ और उसके बाद तनाव बढ़ गया। 2026 का युद्ध 28 फरवरी को शुरू हुआ, 40 दिनों तक चला और 8 अप्रैल को युद्ध विराम समझौते के साथ अस्थायी रूप से समाप्त हुआ।

इस युद्ध के कारण ईरान के बालिस्टिक मिसाईल (ballistic missile) तथा परमाणु हथियार हैं। इज़राइल ने इसे रोकना चाहा और अमेरिका के सहयोग से युद्ध किया और ईरान के सैनिकों और परमाणु हथियारों को भारी नुकसान पहुँचाया। इज़राइल और अमेरिका के हवाई हमले में ईरान के सर्वोच्च नेता अली हुसैनी खामेनेई मारे गए। कई नागरिक भी मारे गए और कई विस्थापित हुए। ईरानी नौसेना के कई जहाज़ बरबाद किए गए। बहले में ईरान ने भी इज़ाईल को हानिकर कार्य किया।

ईरान-इज़राइल युद्ध के कारण तेल आपूर्ति केलिए अनिवार्य होर्मुज़ जल-डमरू मध्य (Strait of Hormuz यानी विश्व का सबसे प्रधान एवं व्यस्ततम तेल व्यापारिक मार्ग) बंद होने से वैश्विक ऊर्जा संकट हुआ है और तेल की आपूर्ति में भारी अवरोध भी हुआ है। यानी ईरान-इज़राइल संघर्ष के कारण समुद्री मार्गों-जहाज़ों की आवाजाही पर सीधा असर पड़ा। इससे जन जीवन ज़्यादा तनावग्रस्त हुआ। तेल आपूर्ति में व्यवधान के कारण एल.पी.जी (LPG-Liquid Petroleum Gas) की आपूर्ति में भारी कमी का सामना करना पड़ा। घरेलू और व्यावसायिक (Commercial) गैस टंकियों (gas cylinders) की कीमत में भारी उछाल हुई । भारत की एल पी जी ज़रूरतों का बड़ा हिस्सा खाड़ी (gulf) देशों से आयात किया जाता है। होटलों, उद्योगों में इस्तेमाल करनेवाले व्यावसायिक गैस सिलेंडरों की आपूर्ति में व्यवधान होने से व्यापारियों को भारी परेशानी हुई । पेट्रोल-डीज़ल की कीमत भी बढ़ी। मानव को हानिकारक, नरसंहार और विश्व की अशांति को कारणभूत विनाशकारी युद्ध से हमें बचे रहना है।

◆डॉ.पी.लता

संपादक, शोध सरोवर पत्रिका

(मंत्री, अखिल भारतीय हिन्दी अकादमी)

तिरुवनंतपुरम , केरल।

स्त्री अस्मिता और भाषा का संघर्ष

◆डॉ. रवि कुमार

सारांश- स्त्री की अस्मिता और अधिकारों के लिए संघर्ष, विशेषकर भाषा के माध्यम से, समाज में एक महत्वपूर्ण बदलाव का संकेत है। पितृसत्तात्मक समाज में जहाँ स्त्री को अपनी आवाज़ और पहचान स्थापित करने की स्वतंत्रता नहीं थी, वहीं अब वह अपनी आवाज़ उठा रही है और अपनी पहचान बनाने के लिए साहस के साथ आगे बढ़ रही है। भाषा ने स्त्रियों को अपने दुःखों, अनुभवों और विचारों को व्यक्त करने का अवसर प्रदान किया है, जिससे वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं। यह परिवर्तन स्त्री-लेखन और उनके समाज में योगदान से संभव हुआ है। यह संघर्ष स्त्री के आत्मनिर्भर बनने और समाज में समानता स्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस लेख को लिखने का उद्देश्य स्त्री की अस्मिता, भाषा और पितृसत्तात्मक समाज में उसकी स्थिति पर विचार करना है। भाषा स्त्री के अधिकारों और पहचान के संघर्ष का एक सशक्त माध्यम है। यह लेख समाज में स्त्रियों के स्थान को समझने और पितृसत्तात्मक संरचना को चुनौती देने के लिए स्त्री लेखन और उसकी आवाज़ के महत्व को रेखांकित करता है। इसके माध्यम से यह भी दिखाने की कोशिश की गई है कि वर्तमान समय में स्त्रियाँ अपनी अस्मिता की पहचान के लिए संघर्ष कर रही हैं, और यह परिवर्तन केवल भाषा के माध्यम से संभव हो रहा है।

बीज शब्द— भाषा, अस्मिता, पितृसत्तात्मक समाज, स्त्री संघर्ष,आवाज़, स्वतंत्रता।

आलेख—

“लड़ता हुआ समाज, नयी आशा अभिलाषा
नये चित्र के साथ नयी देता हूँ भाषा ।”

\- त्रिलोचन

भाषा का प्रश्न केवल अस्मिता

का ही नहीं, बल्कि हमारे अस्तित्व का प्रश्न है। भाषा समाज से लेकर संस्कृति तक से जुड़ी हुई है। "भाषा समूचे समाज की संपत्ति होती है।[1] सभी भाषाओं का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व रहता है। जिस प्रदेश की जो भाषा होती है वह वहाँ के वातावरण, उस प्रदेश की मिट्टी में मिश्रित रहती है। साथ ही भाषा को प्रभावित करने एवं उसके बदलाव में समाज के अलग-अलग वर्गों की भूमिका अहम होती है। जैसा कि मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि, "समाज और मनुष्य के जीवन में भाषा का बुनियादी महत्त्व होता है। समाज की मानवीयता और मनुष्य की सामाजिकता के विकास में भाषा की अहम भूमिका को सब स्वीकार करते हैं। भाषा मनुष्य की सामाजिकता का महत्वपूर्ण लक्षण, माध्यम और प्रमाण है। मार्क्स ने भाषा के बुनियादी महत्त्व की ओर संकेत करते हुए लिखा था कि भाषा व्यावहारिक चेतना है। तात्पर्य यह है कि भाषा मानव जीवन में कोई बाहरी वस्तु नहीं है, वह मानव चेतना का अनिवार्य हिस्सा है।"[2] इसीलिए बदलते सामाजिक परिदृश्य के साथ-साथ भाषा का रूप भी परिवर्तित होता रहता है।

सांस्कृतिक अस्मिताओं और मनुष्य की विकास-यात्रा के इतिहास की अनेक परतें भाषा अपने अंदर समेटी हुई है। अस्मिता की पहचान में भाषा एक सशक्त माध्यम रही है। इसीलिए दुनिया की तमाम लड़ाइयों में भाषाई अस्मिता एक बड़ा प्रश्न रहा है। परंतु इस भाषाई संरचना में, स्त्री को आरंभ से ही जगह नहीं दी गई है, क्योंकि आरंभ से यह समाज पितृसत्तात्मक रहा है। जिस कारण स्त्री को हमेशा दोयम दर्जे का प्राणी समझा गया है। लिंग-भेद की इस खाई में हमेशा पुरूष का स्थान सर्वोच्च रहा है और स्त्री को निम्न समझा गया है। आरंभ में ज़रूर हमारे वेदों में स्त्री को पूजनीय रूप में दिखाया गया है।[3] परंतु पूजनीय उन्हीं स्त्रियों को कहा गया है जो ईश्वर हो या ईश्वर की अर्द्धांगनी के रूप में ईश्वर के समकक्ष विराजमान हो। परंतु असल जीवन में स्त्री का सच कुछ और है। वह किसी पाप या भूल से कम नहीं है, जो बिना पुरुष के सहारे एक कदम भी नहीं चल सकती है। अरस्तु इस संदर्भ में लिखते हैं कि, "औरत अपने कुछ निश्चित लक्षणों की कमी के नाते औरत है। हमें औरतों का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि वे प्राकृतिक कमियों से पीड़ित हैं।"[4] स्त्री आरंभ से ही गुलामी के साये में जीती आ रही है, जिसकी बस एक ही कहानी रही है—

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में दूध और आँखों में पानी।"[5]

सम्पूर्ण दुनिया पुरुष जाति की है जिसके सामने स्त्री हमेशा 'सेक्सुअल' प्राणी रही है। स्त्री की इस हालत का एक कारण उसकी खुद की दशा भी कह सकते हैं, जिसने दुनिया को हमेशा अपनी आँखों से न देखकर पुरुष की आँखों से ही देखना पसंद किया। एक ऐसा समाज जहाँ पुरूषों का वर्चस्व हो, स्त्री की दशा किसी दास के समान हो वहाँ स्त्रियों की भाषा का प्रश्न उठाना किसी जोखिम से कम नहीं है। आरंभ से ही स्त्री को अपने भावों और विचारों को छिपाकर रखने की शिक्षा दी गयी है। स्त्री को कभी अपने विचारों को शब्द देने की इज़ाज़त नहीं दी गयी। ध्यान से देखें तो स्त्री की कोई भाषा रही ही नहीं। दुःख में उसके आँसू और सिसकारियाँ भरना उसकी आवाज़ बनती है, तो खुशी में एक हल्की मुस्कुराहट, क्योंकि तेज़ हँसने का हक भी स्त्री को नहीं दिया गया है और बाकी ज़्यादातर वक्त बस खामोशी ही स्त्री की भाषा रही है। हाँ, कुछ लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियाँ अपने दुःख को ज़रूर प्रकट करती हैं। पर यह लोकगीत किसी पुरुष या किसी महफिल में वे नहीं गातीं बल्कि जब वे एकांत में होती हैं तब अपने आप से ही अपने दुख और क्षोभ को प्रकट करती हैं। पहली दफा इन लोकगीतों में स्त्री की अपनी भाषा दिखती है, जिसमें दुनिया का यथार्थ है।

'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो।
चाहे नरक में दीजो डार।'
'सासु कहेली बझिनिया, ननद ब्रजवासिनी हो।
ललना जिनकारी मैं बारी बिआहिहि, ऊ घर से

निकाले हो।'
'तिरिया के जनम में कवन फल ए मोरे साहब
पुतवा जनम जब होई, तबे फल होई।'

स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले ये गीत न जाने कितनी स्त्रियों के जीवन के जीते-जागते आइने हैं और साथ ही पितृसत्तात्मक समाज के चेहरे को सच भी। स्त्री और पुरुष के भाषाई अंतर को इस उदाहरण से समझना आपको आसान लगेगा, जिससे पुरुष समाज द्वारा बनाए सामाजिक भेद को समझ सकते हैं; जैसे— 'पुत्र'। समाज में 'पुत्र' एक सामाजिक पहचान का कार्य करता है। जिस स्त्री के सिर्फ पुत्री है, वह स्वर्ग की कामना तक से वंचित है। उसकी स्थिति 'बांझ' के समान रहती है। इस पितृसत्तात्मक समाज में पुत्र का महत्त्व स्वर्ग में जाने से लेकर समाज में अपनी विशेष पहचान तक को साबित करता है। इसलिए 'भाई' शब्द बड़ा प्रचलित है और अपने अर्थ में व्यापक अर्थ लिया हुआ भी है। जैसे 'भाईचारा' एक बड़ा शब्द है। 'बंधु' है तो 'बंधुत्व' एक बड़ी भावना है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आपस में सब भाई-भाई हैं। लेकिन इस 'बंधुत्व' में, इस 'भाईचारे' में, स्त्रीत्व की कोई गूँज नहीं है। यह सीधा उस समाज को संबोधित है, जिसमें स्त्री के लिए किसी सामाजिकता की व्यवस्था नहीं है।

भाषा व्यवहार की इन स्थितियों में स्त्रियाँ हमेशा समाज से वंचित हैं। यह भाषाई संरचना समाज में भाषा के अधूरेपन को दिखाती है, जैसा कि अल्पना मिश्र कहती भी हैं कि "क्या यह भाषा अधूरी नहीं है, जिसमें स्त्री स्वर के विकट एकांत का संकेत तक दर्ज नहीं हो सका है। किसी अधूरी भाषा में महान साहित्य और महान समाज का स्वप्न भी अधूरा ही बनेगा। समता के कुछ अपवादों को छोड़ दें तो भी यह कहना गलत न होगा कि हमारी भाषा किस कदर स्त्री-विरोधी मानसिकता का विराट प्रदर्शन है।"[6] वर्तमान में स्थिति ज़रूर बदली है जिसमें भाषा का मुख्य योगदान है।

"सुनो हमें अनहद की तरह
और समझो जैसे समझी जाती है।
नयी-नयी सीखि हुई भाषा।"[7]

आधुनिकता के उदय के साथ ही स्त्री मन में अनेक नए प्रश्न उठते हैं; जैसे— स्वतंत्रता और सुरक्षा। स्वतंत्रता और सुरक्षा दोनों ही स्त्री के लिए बेहद महत्वपूर्ण हैं, पर इन दोनों के साथ ही स्त्री को आत्मनिर्भर और आर्थिक तौर पर मज़बूत होना ज्यादा ज़रूरी है। तभी वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिला कर चल सकती है। इसी कारण जब वर्जिनिया वुल्फ सबसे पहले स्त्री के लिए 'अपना एक कमरा' की बात करती हैं, तो बात ज़्यादा उचित लगती है। वह एक अपना कमरा बस कमरा भर नहीं है, बल्कि उसकी आज़ादी है जिसमें वह खुल के साँस ले सके, अपने सपने को पूरा कर सके, गुलामी की जंजीरों को तोड़ सके और किसी फैसले को खुद ले सके, न कि किसी पुरुष के फैसले को ही सिर्फ अपने जीवन का तकदीर समझे। अपनी इस अस्मिता की पहचान कराने के लिए भाषा एक अहम औषधि है। कवयित्री अनामिका, अस्मिता की इस लड़ाई में भाषा के महत्त्व को बताते हुए लिखती हैं कि, "यह बात अपनी जगह दुरुस्त है कि भाषा एक लीलाभूमि है और एक युद्धभूमि भी। अस्मिता की लड़ाई हो या कोई अन्य मनोसामाजिक संघर्ष, उसकी सबसे महीन और सार्थक अनुगूँजें भाषा में ही दर्ज होती हैं।.... स्त्री भाषा की सबसे बड़ी ताकत त्रास और मुक्ति के आनंद का समायोजन, तर्क और अन्तःप्रज्ञामूलक उस अर्द्ध-विस्मृत भाषिक लय का समायोजन जो गर्भगृह में माँ की देह से छनकर शिशु की देह में उतर आता है- प्रसवकालीन क्रमण और संकुचन स्तन पकड़ने-छुड़ाने की लय, बत्ती जलने बुझने की लय, स्वीकार निषेध की लय, एक तरह से औरतों के जीवन की लय भी हो जाती है और इनकी भाषा भी।"[8]

आरंभ से ही पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री की भाषा को बनने ही नहीं दिया। स्त्री के अपने दुख को प्रकट करने का सबसे पहला कार्य अज्ञात महिला ने

अपने 'सीमंतनी उपदेश' नामक कृति के माध्यम से किया है, जिसने पहली बार स्त्री के दुख को समाज के सामने लाने का काम किया, परंतु वह महिला अपने नाम को छिपाके इस कृति का सृजन करती है क्योंकि उसे पता था कि अगर वह अपना नाम सामने लाएगी तो यह समाज उसके साथ क्या करेगा। परंतु इस किताब में प्रतिरोध की भाषा नहीं है बल्कि अनुरोध व गुहार की भाषा है। इसमें वह लिखती हैं, "हे पिता, हमें कब इस जेलखाने से निकाल के आज़ाद करेगा? हे प्रभु, हमको कौन से अपराध के दंड में इस बंदीखाने में पैदा किया है? तेरे दरबार में हमेशा इंसाफ ही होता है। लेकिन इन जन्म-दुखियों के वास्ते कैसी बेइंसाफी है-अपराध कोई करे, दंड हमें मिले।"[9] पर धीरे-धीरे यह अनुरोध का स्वर प्रतिरोध और संघर्ष के स्वर में बदल जाता है—

"मैं एक दरवाज़ा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतनी खुलती गयी।"[10]

वर्तमान में स्त्री अस्मिता को मज़बूत करने में अनेक लगे हुए हैं और समाज में अपनी सही पहचान बनाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं; मन्नू भंडारी, मैत्रयी पुष्पा, गीताश्री, रमणिका गुप्ता, अनामिका, प्रभा खेतान, उषा प्रियम्वदा, मृणाल पाण्डेय आदि ऐसी ही लेखिकाएँ हैं, जिन्होंने इस संघर्ष को अपनी भाषा एवं साहित्य की मदद से मज़बूर बनने के बजाय मज़बूत बनाया है। स्त्रीवादी लेखिकाओं के अनुसार भाषा एक जरिया है, "जिसके ज़रिए हम अपनी विश्वदृष्टि का निर्माण करते हैं, केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं है। यह ज्ञान के विविध क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने, अस्मिता के निर्माण और दुनिया को परिभाषित करने का ज़रिया है। इसमें अभिव्यक्त भाषिक संबंध हमारे सामाजिक संबंधों की छाया होते हैं। भाषा के अध्ययन के लिए सामाजिक संबंधों के अध्ययन का रास्ता खुलता है।"[11]

स्त्री का जीवन आरंभ से ही केवल माँ, पत्नी, पुत्री और बेटी के दायरे तक ही सीमित रहा है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं था, पर वर्तमान में ज़रूर वह अपने अस्तित्व को समझती है। इन रिश्तों से पहले वह एक इंसान है और यह भाषा के कारण ही सफल हो पाया है। एक माँ का काम अपने बच्चों को केवल कहानी सुनाना भर नहीं है, वह काम नानी-दादी किया करती थी,

"माँ, कह एक कहानी।
"बेटा, समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी?"[12]

स्त्री का अपना जीवन नहीं होता। वह पैदा होते ही अपने पिता-माँ के आश्रय पर पलती है, फिर शादी के बाद अपने पति पर निर्भर रहती है, उसके बाद अपने बच्चों पर आश्रित रहती है। लेकिन अब स्त्री ने अकेला जीना सीख लिया है वह कहती है कि,

"संग-संग जीने में कुछ रह जाता है, कुछ बह जाता है। अकेले में न कुछ रहता है और न बहता है।"[13]

स्त्री अब अकेले के जीवन को अपनी स्वतन्त्रता की तरह मानती है। वह इन रिश्तों और काम के बोझ से (जहाँ उसे प्यार नहीं मिलता उसे केवल एक मशीन समझा जाता है) मुक्ति चाहती है। "अकेले अकेलों की अपनी जीवन शैली है। करते रहते हैं स्व-निर्माण और आराम। परिवार का कोलाहल शोर, तनाव, ऊँच-नीच और तनातनी आस-पास नहीं।"[14] स्त्री का जीवन अब केवल तारीखों और घर की चारदीवारों में नहीं सिमटा हुआ है, वह अब खुले आसमान में उड़ना चाहती है, अपनी ज़िंदगी अपने ढंग से जीना चाहती है,

"अब कोई तारीखें न याद रखो। बस जीती रहो, जीती चलो।"[15]

इन सभी स्त्रियों ने पितृसत्तात्मक समाज की बनी रूढ़ियों को अपनी लेखनी और आवाज़ से ललकारा है। के. सच्चिदानंद का कथन इस संदर्भ में उपर्युक्त लगता है कि, "इन सबों ने मिलकर लिंग केंद्रित व्यवस्था को ललकारा है, साहित्यिक विधान के

प्रतिमानों को पुनःपरिभाषित किया है और नारी देह भाषा की एक सांकेतिकी गढ़ी है। कामना को राजनीति से परे जाकर इन्होंने पुरुष सत्ता में निहित एकाकी श्रेणीबद्ध व प्रयोजनधर्मी सोच पर सवाल उठाए हैं और सत्य, सत्ता, ज्ञान आज भाषा के बाबत सामाजिक विश्वासों को सशंकित नज़रों से देखा है।"[16]

जिस सजगता और नयेपन के साथ स्त्री-लेखन का विकास हो रहा है वह आने वाले समय में स्त्री अस्मिता के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। ये उनके संघर्ष का ही कमाल है जो 'अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो' की बात किया करती थी वह वर्तमान में बदल कर 'अगले जन्म मोहे बिटिया ही कीजो' की बात करती है और यह सब भाषा के माध्यम से ही पूर्ण हो पाया है। स्त्रियाँ अपने भय को छोड़कर साहस के साथ इस पितृसत्तात्मक समाज के साथ संघर्ष कर रही हैं। अंततः बस इतना ही कहा जा सकता है कि "भाषा अतीत की स्मृतियों और भविष्य की संभावनाओं के बीच झूलती हुई रोशनी की रस्सी है जिस पर स्त्रियाँ नंगे पाँव का कठिन सफर नाचती हुई सी पूरा करती हैं।"[17]

संदर्भ—

1. रामविलास शर्मा - भाषा और समाज,राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
2. मैनेजर पाण्डेय- आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-4
3.यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रौतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।- मनुस्मृति 3.56
4.डॉ.अमरनाथ-नारी की मुक्ति संघर्ष, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा.लि.,गाज़ियाबाद, पृष्ठ-40
5. मैथिलीशरण गुप्त- यशोधरा, साहित्य सदन, चिरगांव, पृष्ठ-59
6. जनसत्ता, 10 जुलाई 2016
7. अनामिका- खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ -14
8. अनामिका- कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,पृष्ठ -33-34
9. अज्ञात महिला- सीमंतनी उपदेश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,पृष्ठ-41
10. अनामिका - खुरदुरी हथेलियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ -45
11. सुधा सिंह - ज्ञान का स्त्री पाठ,ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पृष्ठ-135
12. मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा, साहित्य सदन, चिरगांव,पृष्ठ – 80
13. कृष्णा सोबती- ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
14. कृष्णा सोबती - समय-सरगम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
15. कृष्णा सोबती - समय-सरगम, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
16. समकालीन भारतीय कविता और स्त्री - के. सच्चिदानंद, पृष्ठ -51
17. अनामिका - कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-34

◆संपादक, एस.चाँद पब्लिकेशन, नोएडा
पता – खसरा न.402, डी ब्लाक,
लक्ष्मी विहार, बुराड़ी, दिल्ली-84
मो.न.-7982019593
ई.मेल:ravi17893@gmail.com

राम-काव्य में पर्यावरण संरक्षण

◆ डॉ. साधना गुप्ता

विश्व के सभी प्राप्त-अप्राप्त साहित्य में राम-काव्य सर्वाधिक समृद्ध और प्रामाणिक साहित्य है। इसमें सभी सामाजिक, नैतिक व मर्यादावादी मूल्यों के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण के प्रति भी सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस महान काव्य परंपरा का आदि स्रोत महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' है।इस महाकाव्य की रचना के मूल में पर्यावरण संरक्षण का विशिष्ट मूल्य निहित है। हम जानते हैं कि तमसा के पावन तट पर आदि कवि वाल्मीकि के मुख से प्रथम छंद क्रौंच वध की घटना की प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्फुटित हुआ था। वे बहेलिया के द्वारा कौंच पक्षी के जोड़े में से नर कौंच पक्षी की हत्या से इतने व्यथित हुए कि उनके मुख से शाप-वचन के रूप में यह छंद निकला-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमःशाश्वतीःसमाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीकाममोहितम्।।[1]

इसी छंद के विषय में सोचते समय आदिगुरु ब्रह्मा जी ने वाल्मीकि जी को भगवान राम के चरित्र का वर्णन करने का सलाह दिया और बताया कि जब तक इस संसार में नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी तब तक राम-कथा निर्बाध रूप से चलती रहेगी। अर्थात् जब तक हमारा पर्यावरण सुरक्षित रहेगा, तब तक भगवान राम के अमृत चरित्र का दर्शन होता रहेगा-

यावत्स्थास्यन्ति गिरयस्सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।।[2]

इस स्थल पर भी पर्यावरण-संरक्षण के सूत्र दिखाई देते हैं। ब्रह्मा जी ने अत्यंत गूढ़ बात को महर्षि वाल्मीकि के समक्ष रखा, जिसका यह भी उद्देश्य है कि राम कथा के प्रवाह को निरंतर गतिमान रखने के लिए हमें अपने पर्यावरण-नदी, पर्वत आदि का संरक्षण करना भी आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं जीवनदायिनी तत्त्वों पर हमारा जीवन निर्भर करता है। पर्वत राज हिमालय हमें साइबेरिया की ठण्डी हवाओं से रक्षा करते हैं तो वहीं पश्चिमी घाट पर स्थित पर्वत शृंखलाएँ हमारे मानसून की दिशा तय करते हैं। ठीक इसी तरह सिंधु, सतलज, गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, इंद्रावती, गोदावरी, कावेरी आदि नदियाँ अपने जल और उपजाऊ मिट्टी को प्रदान करके अन्नादि की व्यवस्था करती हैं। यही कारण है कि सनातन संस्कृति में प्रकृति सदैव पूज्य रही है।

हम जानते हैं कि राम कथा का एक वृहत् हिस्सा भगवान राम के वनागमन, ऋषियों के उद्धार आदि से सम्बन्धित है। इसीलिए महर्षि वाल्मीकि ने एक अलग से पूरा काण्ड ही पर्यावरण को समर्पित करके पर्यावरण-संरक्षण का रास्ता दिखाया है, जिसे हम अरण्यकाण्ड के नाम से जानते हैं। हम जब भी कोई शुभ कार्य करते हैं उसमें प्रकृति में पाए जाने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण रत्नों को अवश्य ही शामिल करते हैं, यथा- घी, आम के पल्लव, गऊ माता के पवित्र गोबर इत्यादि। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' को आधार बनाकर भारतीय भाषाओं के साहित्य में व्यापक स्तर पर भगवान राम के चरित्र का वर्णन कवियों ने किया है। इन सभी रचनाओं में कोई भी रचना ऐसी नहीं है, जिसमें पर्यावरण की उपेक्षा हुई हो। इसके अतिरिक्त महाभारत के वन पर्व, शांति पर्व तथा सभा पर्व में भी राम का चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। आगे चलकर बौद्ध और जैन कवियों ने भी राम के चरित्र का वर्णन किया है। जहाँ तक हिंदी साहित्य की बात है, तो स्पष्ट है कि महाकवि तुलसीदास से पूर्व कवि भूपति कृत 'राम चरित' में रामायण की चर्चा की जाती है, लेकिन अभी तक यह कृति उपलब्ध नहीं है। इसलिए हम हिंदी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस' को रामकाव्य परंपरा की प्रतिनिधि रचना स्वीकार करते हैं। गोस्वामी जी ने रामकाव्य का आरंभ करते समय भगवान विष्णु, शंकर आदि की जो वंदना की है, उसमें प्रकृति स्वतः

ही शामिल हो गई है। नील वर्ण वाले भगवान विष्णु की आराधना करते हुए वे लिखते हैं-

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन।।[3]

कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे जीवन में पर्यावरण का विशिष्ट महत्त्व है। पर्यावरण के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसमें निहित तत्त्वों का विशिष्ट औषधीय गुण भी जीवन को किसी न किसी प्रकार से लाभ अवश्य प्रदान करता है। मानस में अनेक स्थलों पर तथा अनेक प्रसंगों में पर्यावरण संरक्षण के दृश्य दिखाई देते हैं। संतों के समाज की तुलना करते हुए गोस्वामी जी ने प्रयागराज के अनुपम संगम की ओर भी इशारा किया है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती की धाराएँ मिलती हैं। इस धरा पर जो भी मनुष्य भगवान राम के चरित्र के साथ-साथ ब्रह्मा और महेश के चरित्र को श्रवण करते हैं, उनके पाप वैसे ही धुल जाते हैं, जैसे वे त्रिवेणी में स्नान करके अपने पापों को नष्ट करते हैं तथा पुण्य के भागी बनते हैं।इससे व्यक्ति के जीवन के चारों धामों (पुरुषार्थों) की भी प्राप्ति संभव है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। गोस्वामी जी कहते हैं-

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।[4]

इन सभी पुरुषार्थों में सबसे अहम है सामंजस्य स्थापित करना। भारत की सनातन संस्कृति इन सभी पुरुषार्थों के साथ-साथ जीवन के सभी चार आश्रमों के मध्य सामंजस्य और संतुलन बनाने की सीख देती है। इन सभी का जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन आज के भौतिक युग में जीवन और जगत् के मध्य संतुलन खराब हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के मानस में लोभ का स्थान बढ़ रहा है जबकि जप, तप और संयम जैसे मूल्य पीछे छूट रहे हैं। राम-काव्य में जीवन और जगत् के मध्य अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। यहाँ सभी लोग एक दूसरे से प्रेम करते हैं तथा सभी लोग एक दूसरे के महत्त्व और अस्तित्व का पूरा ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि राम-राज्य में सभी मनुष्य दैहिक, दैविक व भौतिक तापों से मुक्त हैं। इन्होंने सभी के मध्य संतुलन स्थापित करके उसे अपने वश में कर लिया है। यही कारण है कि भगवान राम के राज्य में लोभादि के लिए कोई स्थान नहीं है और जब लोभ, कामना आदि पर संयम स्थापित हो जाता है तो स्वतः ही पर्यावरण सुंदर हो जाता है। इस स्थिति में मानव-मानव के बीच तथा मानव और प्रकृति के बीच कोई भेद नहीं रह जाता, सभी अपने धर्म को भली प्रकार निर्वहण करते हैं-

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिंकाहूहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।[5]

पर्यावरण को लेकर जितना संतुलन और उसकी रक्षा के लिए जो संकल्प राम-काव्य में दृष्टिगोचर होता है, उतना किसी भी प्रबंध व मुक्तक काव्य में नहीं दिखाई देता। राम में ब्रह्म का गुण होते हुए भी तुलसीदास जी ने उनके मनुज रूप को ऊपर रखा है। इसके परिणामस्वरूप आम आदमी राम से बहुत निकट संबंध स्थापित कर लेता है। इसके अतिरिक्त राम के मनुज रूप में आकर कर्मों के संपादन से भी सीख लेता है तथा उनके अनुरूप आचरण करने के लिए प्रयास करता है। राम-राज्य की संकल्पना में भी यही तथ्य निहित है। इसमें सभी लोगों के हित सुरक्षित रहते हैं। समाज में सभी लोगों को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। किसी भी प्राणी के प्रति कोई घृणा, द्वेष या हत्या आदि का विचार नहीं पनपता, क्योंकि मनुज रूप में आकर भगवान राम ने सभी प्राणियों की रक्षा का दृढ़ संकल्प दिखाया है और जनता को सीख भी दी है कि वे इसका स्वेच्छा से पालन कर सकते हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं- “जो दुःखी हैं, असहाय हैं, राम उनके साथ हैं। राम सामान्य जनों के साथी हैं। बंदर-भालुओं की सहायता से अपने युग के सबसे शक्तिशाली अन्यायी को परास्त करना स्वयं राज्य से निर्वासित होकर! राम का यह रूप समूचे मानव इतिहास के संघर्षशील व्यक्ति का प्रतीक बन सकता है। बंदर-भालू सर्वहारा के भी प्रतीक बन सकते हैं, जिनके पास लड़ने के लिए केवल नाखून और दाँत हैं, जो समाज में प्रतिष्ठित नहीं हैं, जंगल में रहते हैं। राम के सबसे निकट कौन लोग हैं- पति परित्यक्ता अहल्या, जनकपुर के सामान्य बालक, अयोध्या के सामान्य नागरिक, वन मार्ग में मिलने

वाले ग्रामीण, केवट, शबरी, बंदर-भालू, राजा सुग्रीव और युवराज अंगद से कहीं अधिक प्रिय और आत्मीय हनुमान, पक्षी-राज गरुड़ नहीं, पक्षियों में भी निम्न गिद्ध और काकभुशंडि!"[6]इसीलिए राम दीनबंधु हैं। वे दीन-दुःखियों के साथ खड़े रहते हैं। वे निर्बल को सबल बनाते हैं, असहाय की सहायता करके उसके जीवन का उद्धार करते हैं। उनके प्रभाव से भक्त भवसागर को आसानी से पार कर सकता है। लंकाकाण्ड में हम देखते हैं कि जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगती है तो उन्हें स्वस्थ करने के लिए आयुर्वेद का ही सहारा लिया जाता है। जामवंत जी इसका उपाय बताते हैं और सुषेण वैद्य संजीवनी बूटी मंगाते हैं-

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवन सुत लेन ॥[7]

कहने का आशय यह है कि पर्यावरण की सुरक्षा में ही हमारी सुरक्षा निहित है। पर्यावरण यदि दूषित होता है तो संसार दूषित होगा और धीरे-धीरे यह धरा जीवविहीन हो जाएगी। राम-काव्य में अनेक स्थलों पर पर्यावरण की रक्षा हेतु भगवान राम द्वारा विविध उपाय सुझाये गये हैं। सेतु निर्माण के समय यदि राम के संकल्प की ओर ध्यान दिया जाए तो स्पष्ट है कि वे चाहते तो अपने पराक्रम से सागर को समूल समाप्त कर सकते थे तथा उसमें रहने वाले सभी जीवों के प्राणों पर संकट आ सकता था। लेकिन राम ने सेतु निर्माण करके सभी जीवों की न केवल रक्षा की अपितु आगे आने वाले समय में सेतु निर्माण के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया। इसके कारण आज लोग नदी, नाले, सागर आदि की रक्षा करने के लिए सेतु निर्माण का सहारा लेते हैं, न कि उसे पाटते हैं। भगवान राम के सेतु निर्माण का प्रभाव इतना व्यापक था कि सागर में रहने वाले सभी जीव भगवान के दर्शन के लिए उपस्थित हो गए। सेतु निर्माण से सभी के प्राणों की रक्षा भी हो गई और साथ ही साथ सभी इस कार्य में सहयोगी भी बन गए। इस महिमा का गुणगान गोस्वामी जी ने इस प्रकार किया है-

सेतुबंधढिगचढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥
देखनकहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥[8]

सारांश यह है कि राम-काव्य में विविध प्रसंगों के अंतर्गत पर्यावरण की शुद्धता तथा उससे प्राप्त होने वाले सभी चीज़ों के महत्त्व के विषय में बताया गया है। भगवान राम के आचरण का अनुकरण करके हम प्रकृति और मानव के मध्य सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं। इससे न केवल हमारा पर्यावरण शुद्ध होगा, अपितु जीव-जंतु आदि भी सुरक्षित रहेंगे। इसमें भौतिक सुखों की जगह आध्यात्मिक सुख के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। यह सुख हमें पर्यावरण को दूषित करने के उपरांत प्राप्त नहीं होगा, अपितु पर्यावरण सुरक्षित होगा तभी हम मन, कर्म व वचन की शुद्धता तक पहुँच पाएँगे। हमारी संस्कृति इसीलिए सुरक्षित है क्योंकि इस संस्कृति के निर्माण के लिए हमने प्रकृति और पर्यावरण को दुष्प्रभावित नहीं किया है। अपितु हमारे महाकाव्यों में प्रकृति और मानव के मध्य एकता के संदेश को प्रसारित किया गया है। इसका आशय यह है कि राम-काव्य की विस्तृत परंपरा में कहीं भी प्रकृति को मानव के साथ विपरीत आचरण की शिक्षा नहीं दी गई है, अपितु पर्यावरण की गोद में ही हमारा विकास सुनिश्चित होता है। इस संकल्प को भगवान राम के मनुज रूप के साथ संबद्ध करके आज की समस्याओं के हल खोजे जा सकते हैं।

संदर्भ

1. रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक 15
2. वही, श्लोक 36
3. गोस्वामी तुलसीदास, बालकाण्ड, दोहा, 3
4. वही, दोहा-2
5. वही, 20/1
6. त्रिपाठी, विश्वनाथ, लोकवादी तुलसीदास, पृष्ठ 24-25, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति 2011
7. गोस्वामी तुलसीदास, लंकाकाण्ड, दोहा 55
8. गोस्वामी तुलसीदास, लंकाकाण्ड, 3/2

◆ सहायक प्राध्यापक (अतिथि),
एनसीवेब, दिल्ली विश्वविद्यालय।
मो.9667262381
ई मेल:sadhanajnu@gmail.com

वृद्धजीवन की समस्याओं पर एक विहंगात्मक दृष्टि और रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य

◆कु॰ मोनिका देवी ◆◆ डॉ. सुनील कुमार.

शोध सारांश-वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था कहलाती है।यह एक ऐसी अवस्था होती है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य जाना पड़ता हैं,लेकिन इस अवस्था में वृद्धजनों को पारिवारिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।वर्तमानयुग में वृद्धों को उपेक्षित किया जाता है, उन्हें हिन दृष्टि से देखा जाता है। समाज और परिवार में उचित मान-सम्मान न मिलने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का जीवन दुष्कर बन जाता है।

वर्तमान समय में मनुष्य प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहा हैं। नित नयी सुविधाएँ जुटाना उसका लक्ष्य होता हैं और यही लालसा उसको उन्नति के शिखर पर पहुँचाती है। प्रत्येक व्यक्ति की इसी प्रतिद्वंद्विता ने उसके सुख, शांति और चैन को छीन लिया है । उसकी सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन आने से उसने परम्परागत दकियानूसी रूढ़ियों और मान्यताओं को तोड़ डाला है । आज वह स्वतंत्र होकर अपने जीवन को जीना चाहता है, लेकिन वृद्धजन अचानक आये इस परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं । उनको अपने समय के आदर्श और जीवन मूल्य ही सुख-शांति प्रदान करते हैं। दो पीढ़ियों के मध्य उत्पन्न इस खायी से वृद्धजनों की समस्याएँ निरंतर बढ़ती ही चली जा रही हैं। वृद्धों की इन समस्याओं और उनकी दुर्दशा को रत्नकुमार सांभरिया ने अपने साहित्य के माध्यम से यथार्थ चित्रण किया हैं।

मूल शब्द –वृद्धजन, अंतरपीढ़ीगत, पारिवारिक, वैश्वीकरण, भौतिकवादी, औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, बाजारवाद।

प्रस्तावना –जीवन प्रत्याशा में सुधार ने संयुक्त परिवारों की संरचना को परिवर्तित कर दिया है। इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्राचीन समय में वृद्धजनों की स्थिति परिवार में अत्यंत उन्नत और सम्मानीय होती थी । समाज में उनका उच्च स्थान होता था और परिवार की समस्त बागड़ोर उनके अपने हाथों में होती थीं। परिवार का कोई भी फैसला उनकी सलाह के बिना नहीं होता। लेकिन वर्तमान समय में वृद्धजनों की उपयोगिता कम और उनका मान-सम्मान लगातार गिरते जा रहे हैं। पीढ़ीयों के मध्य उत्तरजीविता के कारण भावात्मक लगाव में कमी हो गयी है । ज़िंदगी के अंतिम समय में वृद्ध अपने परिवारों से वंचित हो रहे है । डॉ.परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं- "आधुनिकता ने जीवन-मूल्यों का विघटन कर दिया है, आपसी सम्बन्ध बिखर गये हैं, रूढ़ियों और परम्पराओं से अपने को मुक्त करने की छटपटाहट और संघर्ष के बीच आदमी अपरिचय से ग्रस्त होता जा रहा है और अकेलेपन की पीड़ा उसे सालती चली जा रही है ।"[1]तात्पर्य यह कि परम्पराओं और रूढ़ियों का विरोध आधुनिक युवा ने किया है, लेकिन आज के समय में उसके पास आत्मिक शांति न के बराबर है । इस बदलाव का सबसे ज़्यादा प्रभाव तो वृद्धों पर हुआ है ।

वृद्धावस्था मानव जीवन का शाश्वत और अंतिम पड़ाव है, जिसमें जीवन आसक्त हो जाता है। शारीरिक क्षमता कमज़ोर हो जाती है, जिसके कारण भरण-पोषण के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है । यही निर्भरता वृद्धजन की मूल समस्या होती है। शारीरिक दृष्टि से घुटन भरी ज़िन्दगी को वृद्ध जीने को मज़बूर हो जाते हैं । विद्यानिवास मिश्र ने अभिव्यक्त किया है- "बुढ़ापा शरीर का उतना धर्म नहीं है, जितना मन का । वास्तव में वृद्ध व्यक्ति शरीर से सक्षम रहते हुए भी मन से टूट जाता है । उसे लगता है कि उसकी उपयोगिता समाप्त हो गई है ।"[2]वृद्ध-जीवन में अकेलापन, तनाव, हीनभावना, कुंठा आदि अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़ते हैं। वह युवा पीढ़ी से तालमेल बैठाने में असमर्थ रहता है, जिससे उनकी समस्याओं में ओर अधिक वृद्धि हो जाती है।वर्तमान में नई पीढ़ी अपनी ही धुन में मस्त है, जिसके परिणामस्वरूप वह बूढ़ों की आशाओं और आकांक्षाओं की परवाह नहीं करता है ।

औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद तथा वैश्वीकरण ने वृद्धजनों की समस्याओं को उत्पन्न किया है, जिससे भौतिकतावादी व बाज़ारवादी संस्कृति ने मनुष्य की मानसिकता को जकड़ लिया है। वर्तमान में प्रत्येक सम्बन्ध उपयोगिता को ध्यान में रखकर बनाया जाता है जिसके कारण वृद्धजनों की ज़िंदगी बदतर हो गयी है।"संयुक्त परिवार प्रणाली के अंतर्गत वृद्धों को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त थी, परन्तु जैसे-जैसे औद्योगीकीकरण, नगरीकरण व सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई, वैसे ही संयुक्त परिवारों का विघटन होने लगा।"[3] वृद्धों की दशा को अभिवक्त करते हुए सिमोन दी बाउवार लिखती हैं- "समाज में जब व्यक्ति का योगदान रहा, तब तक वह समाज का अभिन्न अंग बना रहा और जैसे ही बूढ़ा हो गया, वह समाज से कट गया और केवल एक वस्तु बनकर रह गया। ऐसी वस्तु जिसका न कोई मोल है और न किसी काम का है और न ही कुछ पैदा कर सकने योग्य। "[4] बदलती हुई जीवन शैली के कारण युवा अपने काम में व्यस्त रहता है,जिसके कारण वह अपने घर के वृद्धों को समय नहीं दे पाता है। इसी कारण आज प्रत्येक गली के कोने-कोने पर वृद्धाश्रम खुल रहे हैं। विकास की इसी अंधी चकाचौंध ने वृद्धजनों का जीवन नर्क बना दिया है।

रत्नकुमार सांभरिया ने अपने साहित्य में वृद्धजनों की समस्याओं का सजीव वर्णन किया है। हिंदी साहित्य में वापसी, बूढी काकी, गडगिल,छत्तीस तोले का करधन आदि कहानियाँ वृद्धों की दुर्गति को चिह्नित करती हैं। रत्नकुमार सांभरिया की बूढ़ी, खेत, इत्तफाक, कील हुकुम की दुग्गी आदि अनेक कहानियाँ वृद्धजनों की बदत्तर स्थितियों के यथार्थ का वर्णन करती हैं। 'कील' कहानी की पीड़ा मानव मन को झिंझोड़कर रख देती है, क्योंकि एक बच्चे के जीवन में उसकी माँ का स्थान बहुत ऊँचा होता है। माँ भी बिना किसी शिकायत और स्वार्थ के सन्तान के भविष्य के लिए अपनी जान तक न्योछावर कर देती है। लेकिन 'कील' कहानी ऐसे बेटे और बहु का चित्रण करती है, जो आधुनिकता के प्रभावस्वरूप स्वार्थी हो गए हैं। कहानी में गाँवो को छोड़कर शहरों में आ बसे लोग अपनी मातृभाषा व मातृभूमि को भूलने लग जाते हैं।बाद में अपने गाँव की ज़मीन,जायदाद को हड़पने के लिए वृद्ध माँ-बाप को झूठे वादे करके शहर बुला लेते हैं।

सोनवती भी इकलौते पुत्र की माँ है, जिसका पुत्र उसको गाँव में छोड़कर शहर चला जाता है। एकदिन वह स्वार्थ के कारण माँ को अपनी बीमारी का बहाना करके शहर बुलवाता है। वह माँ से गाँव की सारी ज़मीन, जायदाद को बेचकर उसके पास आने के लिए कहता है- "माँ, अब तुम्हारी उम्र अकेले रहने की नहीं है, अपना सब सामान लेकर, मकान बेचकर यहीं आ जाओं, हमें तुम्हारी याद आती है।"[5]निश्छल मातृत्व से पगी वृद्ध माँ उनके झाँसे में आ जाती है और ख़ुशी-ख़ुशी सब कुछ बेचकर शहर में आ जाती है। लेकिन सोनवती के विश्वास को उस समय झटका लगता है, जब उसे पता चलता है कि उसे उसके पुत्र और पुत्रवधू दोनों ने मिलकर उसे ठग लिया है। उसके गहनों और जेवरातों से नयी कार खरीद ली गयी है और जन्मदिन की पार्टी चल रही है।सबसे ज़्यादा आघात उसे तब लगता है जब उसे पता चलता है कि घर में उसका कोई स्थान नहीं है बल्कि उसे अब बोझ और हिकारत की दृष्टि से देखा जा रहा है।

साहित्यकार रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'आश्रय' भी वृद्धजन की समस्याओं को दर्शाती है। कहानी सम्पत्ति के लालच में अंधी संतानों के मुँह पर एक तमाचा है ,जो माँ-बाप को केवल धन का ही स्रोत समझकर सिर्फ पैसों के लिए सम्बन्ध निभाते हैं। नायक के. के. सेवक का पुत्र और पुत्रवधू पिता का घर बेचकर वहाँ आलीशान कोठी बनवाना चाहते हैं, लेकिन अपने वृद्ध पिता को अपने साथ नहीं रखना चाहते है। पिता की सारी सम्पत्ति को हड़पने के बाद उसको वृद्धाश्रम में भेजना चाहते हैं। डॉ राधा गिरधारी लिखते हैं- "पुरानी मान्यताओं के विरोध ने, माता-पिता के जीवन में होने वाले हस्तक्षेपों से दूर हटने की प्रवृत्ति से पारिवारिक सम्बन्ध तनावपूर्ण बनते जा रहे हैं।"[6] आज की पीढ़ी में नैतिक मूल्यों का अभाव होता जा रहा है, जिसे देखकर आज वृद्धजन बहुत दुखी होते हैं। वृद्धजन यही उम्मीद करते हैं कि उनके बच्चे हमेशा उनके पास रहें और वृद्धावस्था में उनकी देखभाल करें।

वर्तमान समय में मानव अत्यधिक स्वार्थी होता जा रहा है। इस स्वार्थपरता के कारण वह वृद्धों

को तभी तक आदर और सम्मान देता है, जब तक उनसे कोई स्वार्थ न सध रहा हो । चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद के अनुसार- “मानव जातियों में अपने अनुभव के कारण वृद्ध को विशेष स्थान भले ही दिया गया हो, पर अवसर पाकर उसे घर और समाज के इस विशेष स्थान से हटा भी दिया जाता है या फिर परिस्थिति भाँपकर वृद्ध खुद ही हट जाता है।”[7] समाज और परिवार के सदस्य वृद्धों के शारीरिक-मानसिक क्षरण को देखते हुए वृद्धावस्था को अभिशाप मानते हैं।

आज के आधुनिक परिवेश के फलस्वरूप परिवारिक रिश्तों के मध्य दरार उत्पन्न हो रही है। ‘हुकुम की दुग्गी’ कहानी में वृद्धजनों की समस्याओं को समाज के समक्ष प्रकट करती है। बीमारी के कारण वृद्ध जतनलाल बिस्तर पर ही पड़ा रहता है। उसके बच्चे न तो उसकी सेवा करते हैं और न ही दवा-दारू। जतनलाल की मृत्यु के उपरांत दोनों बेटों के मध्य जायदाद के बँटवारे को लेकर झगड़ा हो जाता है। जीते-जी जिन्हें अपने बाप का ज़रा सा भी ध्यान नहीं था, वही आज बँटवारे के लिए लड़-लड़ मर रहे थे- “भूत, वर्तमान और भविष्य का पैगाम देने वाले जतनलाल ने स्वर्ग देख लिया था । आज यही नरक भोग रहे थे । पत्नी के मरते ही खुद को तीन साल हो गए थे । खाट पकड़े । खाट में ही गू-मूत सब ।”[8]यह कथन वृद्धजनों की करुण शारीरिक दुर्बलता और बेबसी की दशा का वर्णन करता है ।वृद्धावस्था से गुज़रने वाले सभी मनुष्यों को इस अनुभव से गुज़रना पड़ता है । उम्र बढ़ने के साथ-साथ शरीर धीरे-धीरे कमज़ोर होने लगता है। चेहरे का झुर्रियों से भर जाना, आँखों से कम दिखलायी देना,बालों का सफेद हो जाना आदि समस्याएँ वृद्धावस्था में अक्सर देखने को मिलती हैं ।

रत्नकुमार सांभरिया की ‘बूढ़ी’ कहानी वृद्ध समस्या को उजागर करती है । बूढ़ी विधवा, असहाय और साधनहीन है, पर वह साधनहीनता में ही गर्वयुक्त स्त्री है । जब उसे अपनी बेटी सरिता के आने का समाचार मिलता है, तो वह फूली नहीं समाती है । अपनी आँखों में चमक और वृद्ध शरीर में स्फूर्ति लिए भयंकर गर्मी में भी मास्साब से सौ रूपये उधार माँगती है । मास्टर रुपये उधार देने से मना कर देता है, तो वह घर से काँसे की थाली लाकर मास्टर से कहती है कि- “मास्साब ! मेरे ब्याह का दान है यह ! इसे रख लो, सिर्फ चार दिन ! पिंसन मिलते ही छुड़ा लूँगी !”[9] अपनी बिटिया को दान में देने के कारण मास्टर बूढ़ी को सौ रूपये दे देता है। काँसे की वह थाली उसके पति की एकमात्र निशानी थी, जिसे बुढ़िया ने कलेजे से लगाकर रखा था। मास्टर साहब को देते समय बुढ़िया का मन रो रहा था। वृद्ध-जीवन को आर्थिक आधार पर अक्सर अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। धन के अभाव में वृद्धों को जीवन की मूल ज़रूरतों के लिए भी दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। जीवन के इस अंतिम पड़ाव में बहुत से वृद्ध लोग घबरा जाते हैं। “प्राय: बुढ़ापे में कार्य करने की गति क्षीण होने लगती है। बूढ़ा व्यक्ति आय के स्रोत को देख आशंकित हो उठता है। उसके मन-मस्तिष्क पर जीवन निर्वाह सम्बन्धी प्रश्न कौधने लगते हैं।”[10] इससे स्पष्ट होता है कि जिस व्यक्ति ने अपना सम्पूर्ण जीवन अपने परिवार की सभी आवश्कताओं की पूर्ति करने में समर्पित कर दिया हो, ऐसा व्यक्ति वृद्धावस्था में असहाय होने से डरता है। नयी पीढ़ी के द्वारा पुरानी पीढ़ी का तिरस्कार करना भी वृद्धजनों की बहुत बड़ी समस्या है ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि आधुनिक समय में वृद्धजनों की दशा बहुत दयनीय है।वृद्धजन समाज के लिए अत्यंत उपयोगी है। लेकिन उनके अनुभवों का उपयोग मनुष्य नहीं कर पा रहा है।आधुनिक समय में वृद्धजनों की समस्याएँ बढ़ती ही जा रही हैं, इस अवस्था में जहाँ मानव को प्रेम, सहयोग और मानसिक संतोष की आवश्यकता होती है, वहीं उसको अपमानित किया जा रहा है। रत्नकुमार सांभरिया का साहित्य आधुनिक जीवन के सत्य को दर्शाता है, जहाँ संतानों पर माँ-बाप बोझ बन गए है। समाज में संयुक्त परिवारों का स्थान एकल परिवारों ने ग्रहण कर लिया है । संतानें स्वार्थी हो गयी हैं। लेकिन रत्नकुमार सांभरिया के वृद्धजन पात्र चुपचाप अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों का डटकर मुकाबला करते हैं । वे भाग्य का रोना नहीं रोते । वे अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करना जानते है । वे कमज़ोर नहीं हैं । वृद्धजन को घर का कबाड़ समझना,

उनका तिरस्कार करना और परिवार से अलग कर देना इस अन्यायों को रोकना ही रत्नकुमार सांभरिया के साहित्य का उद्देश्य है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. शिवचंद्र सिंह, साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श, दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, 2017, पृ-240
2. भारद्वाज द्वारकेश, वृद्धावस्था, आयुष पब्लिकेशन, जयपुर, 2018, पृ-63
3. के. एन. एस. यादव, एजिंग सम इमरजिंग इश्यूज, मानक पब्लिकेशन,दिल्ली, 2011, पृ-06
4. स. डॉ. एस. वाय. होनगेकर, इक्कीसवीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, वाराणसी, 2018, पृ-306
5. रत्नकुमार सांभरिया, 'कील', एयरगन का घोड़ा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ-166
6. डॉ राधा गिरधारी, राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपूर, 1995, पृ-93
7. चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद, वृद्धावस्था विमर्श, परिलेख प्रकाशन, नजीबाबाद, 2016, पृ-25
8. रत्नकुमार सांभरिया, 'हुकुम की दुग्गी', एयरगन का घोड़ा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ-27
9. स. डॉ. वर्षा वर्मा, रत्नकुमार सांभरिया की चयनित कहानियाँ, दृष्टि प्रकाशन, जयपुर, 2023, पृ-49
10.नीरज पाठक, वृद्धावस्था में कैसे जियें, रोहित पब्लिसिंग हॉउस, दिल्ली, 2018,पृ-41

◆ शोधार्थी

◆◆ शोध निर्देशक, हिंदी विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार,
(उत्तराखंड)।
मो. : 7617649294
ई-मेल : gondiyal@gmail.com

पारम्परिक प्रतिमानों को तोड़ती कविताएँ: 'सात भाइयों के बीच चम्पा'

◆सृष्टि सिंह

'सात भाइयों के बीच चम्पा' कात्यायनी का एक महत्वपूर्ण कविता-संग्रह है। इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1994 में आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाण से हुआ। उसके बाद दूसरा संस्करण 1999 में तथा तीसरा संस्करण 2008 में परिकल्पना प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इस कविता संग्रह के मूल में स्त्री और स्त्री के प्रति समाज की दृष्टि है, समाज में स्त्री की स्थिति है और स्त्री जीवन है। प्रस्तुत काव्य संग्रह पाँच खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड 'इस स्त्री से डरो' में वे कविताएँ संकलित हैं जिन्होंने कात्यायनी की लोकप्रियता को बढ़ाया। इस खंड में उनकी अति प्रसिद्ध रचनाएँ 'गार्गी', 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' और 'सात भाइयों के बीच चम्पा' आदि कविताएँ संकलित हैं, जो इस काव्य संग्रह के नाम का भी आधार है। इसके अलावा 'देह न होना', 'कवि से डर गई स्त्री', 'ड्योढ़ी भीतर दुपहरिया' और 'अपराजिता' आदि महत्वपूर्ण कविताएँ हैं जो स्त्री के प्रति समाज की दृष्टि को उजागर करती हैं। 'हॉकी खेल की लड़कियाँ' नामक कविता में कवयित्री ने हॉकी खेलते हुए स्त्री को खुश एवं निश्चिन्त दिखाया है तब तक, जब तक कि वे हॉकी खेल रही हैं, वे लहरा रही हैं, चमक रही हैं और मैदान के अलग-अलग कोनों में रह-रह कर उमड़-घुमड़ रही हैं। इस बात से निश्चिन्त होकर कि समाज उनके प्रति क्या दृष्टि रखता है।

समकालीन स्त्री कवयित्रियों में कात्यायनी की कविताएँ अन्य रचनाकारों की अपेक्षा एक विशिष्ट पहचान रखती हैं। उनकी कविताओं में हमारे समय की भयावह त्रासदियों और तमाम विसंगतियों से भरे अँधेरों के खिलाफ स्त्री निरंतर संघर्ष करते हुए देखी जा सकती है। वे हमारे समाज की यथास्थिति की

आलोचना और प्रतिगामी शक्तियों के खिलाफ अपना प्रतिरोध दर्ज करती हैं। उनकी कविताओं का दायरा बहुत व्यापक है। उनकी कविताओं में स्त्रियों की समस्याओं के साथ-साथ प्रेम, दुःख, प्रतिरोध और दैनिक जीवन के विभिन्न रंगों की उपस्थिति भी देखी जा सकती है। उनकी कविताओं में प्रतिरोध की ऐसी अभिव्यक्ति है, जो स्त्री के स्वाभिमान और स्वतंत्रता को पुनः स्थापित करने का प्रयास करती है। नारीवाद के बने-बनाये ढ़ाँचे से पृथक समाज की संघर्षशील स्त्री को स्थापित करती हैं।

कात्यायनी का जीवन और वैचारिक प्रतिबद्धता उनकी कविताओं में बखूबी देखी जा सकती है। उनकी कविताओं में प्रतिरोध का स्वर है, उन्हीं के शब्दों में कहें तो 'कवि को कभी-कभी लड़ना भी होता है, बंदूक़ भी उठानी पड़ती है और फ़ौरी तौर पर कविता के ख़िलाफ़ लगने वाले कुछ फ़ैसले भी लेने पड़ते हैं। ऐसे दौर आते रहे हैं और आगे भी आएँगे।' कात्यायनी की कविताओं का स्त्री-विमर्श निजी से अधिक सामूहिक है। उनकी स्त्री-विमर्श पर केन्द्रित कविताओं में मार्क्स, सिमोन, वर्जीनिया वुल्फ आदि की चेतना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। कवि विष्णु खरे के शब्दों में कहें तो 'समाज उनके सामने ईमान और कविता कुफ़्र है, लेकिन दोनों से कोई निजात नहीं है, बल्कि हिन्दी कविता के 'रेआलपोलिटीक' से वह एक लगातार बहस चलाए रहती हैं।' कात्यायनी की कविताएँ स्त्री और वंचित वर्ग की आवाज़ बनती हैं।

'हॉकी खेलती लड़कियाँ' कविता में लडकियाँ जितने उन्मुक्त भाव से हॉकी खेल रही हैं, समाज उन्हें उतना ही बांधने का प्रयास करता है। खेलते समय वह जितनी स्वतंत्र है समाज उतना ही 'चूल्हे की आँच और मूसल की धमक' की ओर धकेलने का प्रयास करता है। कविता में कात्यायनी ने बिना किसी आवरण के स्त्री की उड़ान और समाज की बाधाओं को आमने-सामने रखा है। लड़की अपनी महत्वकांक्षाएँ पूरी करने की दिशा में जैसे ही कदम बढ़ाती है, समाज उनके पैरों में बेड़ियाँ डालने लगता है। इस कविता में लड़कियाँ हॉकी खेल रही हैं और दूसरी तरफ उनके लिए रिश्ता आया हुआ है। माँ प्रतीक्षा कर रही है कि लड़की आए तो संतोषी माँ की कथा पढ़कर उनका व्रत खुलवाये, बाबूजी चाय नाश्ते का इंतज़ार कर रहे हैं। सबको उस हॉकी खेलती लड़की का इंतज़ार है। यदि लड़कियाँ थोड़ी देर से लौटती हैं तो परिवार के लोग संदेह की दृष्टि से देखते हैं और माता कुलक्षणी संबोधित करती हैं। यह दृष्टि और संदेह उड़ान के सपने देखने वाली लड़कियों को ज़मीन पर लाकर पटक देते हैं। समाज उन्हें हॉकी के खेल से दूर कर चहारदीवारी में कैद करना चाहता है। लेकिन इस बार वे गोल गोल चिल्लाते हुए हँस रही होंगी।

'सात भाइयों के बीच चम्पा' शीर्षक कविता में स्त्री जीवन के संघर्ष एवं जिजीविषा को दिखाया गया है । एक स्त्री बचपन से लेकर अंत तक समाज में संघर्षरत रहती है। विडम्बनाओं और विरोधों का शिकार होकर भी वह पुनः चेतस हो उठती है। पूरी कविता में चम्पा के जीने की वजहों से ज़्यादा मरने के कारण और अवसर उपस्थित किए गए हैं। यहाँ चम्पा के माध्यम से समग्र समाज की स्त्री जाति के जीवन की संभावनाओं के द्वार को बंद करने का प्रयास दिखाया गया है। कन्या के भ्रूण से लेकर जन्म लेने तक और बड़े होने तक कई स्तरों पर मारी जाती है। कभी उसकी इच्छाओं का दमन होता है तो कभी उसके अधिकारों का हनन। यहाँ चम्पा का बार-बार उपेक्षित होना और फेंक दिया जाना स्त्री के आत्मसम्मान पर चोट पहुँचाने का प्रतीक है और चम्पा का पुनः चेतस हो जाना, स्त्री के संघर्ष का प्रतीक है। हर दरवाज़े से बाहर जहाँ-जहाँ से उसको निकाल दिया गया, वह निस्संग निर्भय मुस्कुराती रही। कविता का उद्देश्य यही है कि स्त्री अपनी लड़ाई खुद लड़ती है। उसे अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए किसी के साथ की ज़रूरत नहीं है। आज की स्त्री निर्भय होकर अपने आत्मसम्मान एवं अस्मिता की रक्षा करती है। 'एकांत में' कविता में स्त्री का अपने लिए सोचना समाज के लिए खतरा बन जाता है। वह अपने दुःख के बारे में नहीं कहती, बल्कि वह सामान्य तौर से केवल सोच भी लेती है तो पितृसत्तात्मक समाज की आँखों में खटकने लगती है। 'वह सोचती है

एकांत में और नतीजे तक पहुँचने से पहले ही खतरनाक घोषित कर दी जाती है।' कवयित्री की मूल चिंता है कि स्त्री अपने बारे में बात करे। 'भाषा में छिप जाना स्त्री का' नामक कविता में कहा है कि पुरुषवादी दृष्टि से स्त्री के बारे में लिखा गया साहित्य स्त्री के लिए बेमानी हो जाता है जब स्त्री अपनी भाषा रचती है। स्त्री की भाषा सामंतवादी सत्ता पर प्रहार करती है और पूरे समाज को चुनौती देती है। 'देह न होना' कविता में स्त्री के प्रति समाज की वस्तुपरक दृष्टि निहित है। समाज में स्त्री को आदि काल से ही उपभोग की वस्तु समझा जाता रहा है। अब जब स्त्री अपनी अस्मिता की बात कर रही है तब वह समाज की नज़रों में खटकने लगती है। वह समाज में जब भी अपनी आवाज़ उठाती है तो उसकी आवाज़ को बंद करने की साजिश की जाती है। 'ड्योढ़ी भीतर दुपहरिया' में स्त्री को दास की स्थिति में दिखाया गया है। प्राचीन काल से दासों की जिस तरह अपमानित किया जा रहा है। घर की चहारदीवारी के भीतर घर का सारा काम खत्म करने के बाद भी वह निश्चिंतता से आराम नहीं कर सकती, बल्कि उसे यह ध्यान रखना पड़ता है कि घर में पुरुष की नींदें न खराब हों। कविता व्यंग्य करती है कि -

"ए मेहरारू क्या बुनती हो/क्या गुनती हो, क्या धुनती हो ?
इस पागल मन को समझाओ/उड़ने की बातें करता है।"[1]

समाज स्त्री पर दबाव बनाता है कि वह दूसरे के लिए जीने को मज़बूर रहे, उसे अपने बारे में सोचने का अधिकार नहीं है। 'अपराजिता' कविता 'सात भाइयों के बीच चम्पा' कविता से साम्य रखती है। कविता की शुरूआत में मनु की एक पंक्ति दी गई है जिसमें मनु कहते हैं कि नारी को रचते समय ईश्वर ने उसे अपवित्रता और दुर्व्यवहार दिया। इसी पंक्ति के विरोध में पूरी कविता खड़ी होती है -

"नुमाइश के लिए गहने पहनाये/और हमारी आत्मा को पराजित करने के लिए
लाद दिया उस तमाम अपवित्र इच्छाओं/और दुष्कर्मों का भार।"[2]

जीवन और कविता में प्रथम ऋग्वेद संहिता की उक्ति दी गई है कि नारी की रचना इसलिए हुई है कि वे वंश वृद्धि कर सकें। इसी का खंडन करते हुए कवयित्री कहती हैं कि कोई भी सृजन बिना सोचे हुए नहीं होता। स्त्री जीवन के सौन्दर्य के बारे में सोचती है जिसके बिना सबकुछ अधूरा है। वह अपने लिए आज़ादी का सृजन करती है। पौराणिक कथा की गार्गी को आधार बनाकर समाज पर व्यंग्य करती हैं कि पुरुषवादी समाज यह नहीं चाहता कि स्त्री कभी उससे तर्क करे -

"मत जाओ गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
तुम्हारा सिर कटकर लुढ़केगा जमीन पर,
मत करो यज्ञवल्क्यों की अवमानना
मत उठाओ प्रश्न ब्रह्मसत्ता पर।"[3]

'गुड़ की डली' और 'माँ के लिए एक कविता' मातृत्व के ऊपर रचित कविताएँ हैं। कात्यायनी की कविता में स्त्री जितनी कठोर व संघर्षशील है वहीं उसका मातृत्व स्वरूप उतना ही कोमल और वात्सल्य से भरा हुआ है। वह अपने पुत्र की इच्छा-पूर्ति के लिए हर संभव प्रयास करने के लिए तैयार है, उसका ममत्व पूरी दुनिया के रिश्तों से ऊपर है।

काव्य-संग्रह का दूसरा खंड 'ऐसा किया जाये कि' में तेरह कविताएँ संकलित हैं, जिनका केन्द्रीय विषय जीवन और कलात्मकता है। कात्यायनी ने कला को उतना ही उपयोगी माना है जो हमारी बात को सीधे तरीके से कहने में सहायता कर सके। इसे समकालीन कविता की विशेषता के रूप में भी देखा जा सकता है जब कविता जटिलताओं और कलात्मकता के भार से मुक्त होकर लिखी जाने लगी, इसे कविता में 'मैच्योरिटी' का समय कहा जा सकता है। कला निखरते-निखरते यहाँ तक पहुँच सकती है कि उसमें सीधे तरीके से बात कही जा सके। 'कला कला के लिए' नामक कविता में वे इस सिद्धांत को ही खारिज करती हैं। वे लिखती हैं -

"मूल धारा से बहक गए हमारे पूर्वज/जो जीवन से कट गये
कहने लगे/'कला होती है सिर्फ कला के लिए !"[4]

'जीवन' इस काल खंड का दूसरा मूल विषय है। कात्यायनी की कविताओं में जीवन के प्रति सकारात्मकता है, वे पलायन में विश्वास नहीं करती हैं। एक दिन जीवन का अंत निश्चित है किन्तु उसके लिए जीवन के प्रति उदासीन न होकर कुछ नया सृजन कर जीवन को सार्थक करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। जीवन और संघर्ष साथ-साथ चलता रहता है। 'कुण्डलाकार विचार' कविता में वे लिखती हैं कि -

"मिटना है एक दिन पृथ्वी को/पृथ्वी पर जीवन को/फिर क्यों कुछ करें/
क्यों लिखें कविता/किसी नये आविष्कार की उत्तेजना/
किसी दार्शनिक चिंता या उलझन में जिएँ/जीना फिर यहाँ से शुरू करें।"[5]

तीसरा भाग 'भागने के खिलाफ' शीर्षक से है जिसमें मुख्य रूप से साहित्यकार कविता के केंद्र में हैं। समकालीन कविता के शुरूआती दौर में नई धाराओं की बाढ़ सी आ जाती है। साहित्य के ठेकेदार अपना-अपना नाम उजागर करने के लिए नयी-नयी धाराओं का नामकरण करते हैं जिसके मूल में कोई बड़ी प्रवृत्ति नहीं है जो समकालीन साहित्य की है। 'एक दिन शेष जी के घर' शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती हैं कि -

"शेष जी ने कहा जमीन नयी तोड़नी है/कविता में, गनेशजी ने बात की कहानी की/
जमीन की, जमीन की आलोचना/खिसकती दिखी महेशजी को, गुस्सा हुए वे/
सुरेश जी बोले अलगाव पर/सांप्रदायिकता पर और फेमिनिज्म पर।"[6]

समकालीन आलोचनाएँ जो हो रही हैं, उनमें सार्थकता नहीं रह गई है। उनकी चर्चा का विषय है कि नाजिम हिकमत, पाब्लो नेरूदा क्यों नहीं थे या लातिन अमेरिका में क्यों पैदा हुए। मार्खेज और गोरकी धँसो-धँसो जल्दी धँसो जल्दी कविता में साहित्यकारों पर व्यंग्य करते हैं जो प्रगतिशील होने का ढोंग रचते हैं। यह रघुवीर सहाय की प्रसिद्ध कविता 'हँसो हँसो जल्दी हँसो' के शीर्षक से सम्बंधित है जो 1978 में प्रकाशित हुई थी। 'कवि और क़र्ज़' नामक कविता में कवियों की दयनीय स्थिति और उसके प्रति अकादमिक वर्ग की समाज के प्रति उपेक्षित दृष्टि को दिखाया गया है। जो प्रोफ़ेसर कवि की कविता में संवेदनाएँ ढूँढते हैं, संवेदनाएँ पढ़ाते हैं और संवेदित होने की शिक्षा देते हैं, उस कविता के कवि के प्रति उनकी संवेदना नहीं दिखती। वे उसके प्रत्यक्ष या परोक्ष तरीके से उसकी सहायता नहीं करना चाहते।इस खंड की अन्य एक समस्या तथाकथित महानता व महान लोगों के सन्दर्भ में है, लेकिन स्वयं ऐसी गलतियाँ भी कर जाते हैं जिसका भुगतान भावी पीढ़ी को करना पड़ता है।

इस संग्रह का चैथा भाग 'निविड़ तिमिर में' शीर्षक से है। इस खंड की कविताओं में नारी मन के प्रेम, कोमल भावों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम की पुरानी परिपाटी से अलग नये प्रतिमानों को स्थापित करती हैं। चूँकि यह मार्क्सवादी चेतना से संपन्न कवयित्री है । इसलिए प्रेम को भी यथार्थ के धरातल पर रखकर चित्रित करती हैं । अतः वह स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करती हैं। 'यदि हम यहाँ नहीं होते तो' शीर्षक कविता में वे लिखती हैं कि -

"जागते हुए सोते रहते/सोते हुए जागते रहते/बीमार और स्वस्थ्य होने/
खुश और दुःखी होने/जीने और मरने के बीच का अंतर भूलकर/
बस घिसटते रहते/घिसते रहते।"[7]

'विदा' कविता में स्त्री मन के दुःख और पुनर्मिलन की आशा को कवयित्री ने विषय बनाया है। ऐसी ही बहुत सी कविताएँ हैं जो स्त्री मन के भावों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करती हैं।इस संग्रह का अंतिम और पाँचवाँ भाग 'कहीं कोई आग' हिंदी के प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन को समर्पित है। संग्रह में संकलित 'कहीं कोई आग' शीर्षक कविता में कात्यायनी ने वर्तमान समय में मनुष्य के अन्दर लगातार बढ़ते क्रोध की आग को रेखांकित किया है, एक ऐसी आग जो सदियों से हृदयों में दहक रही है। सत्ता और सामाजिक बुराइयों से उत्पन्न क्रोधाग्नि की आँच में चमकते हुए लाल चेहरे नज़र आ रहे हैं। यह

क्रोध कवयित्री का अकेला क्रोध नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज में दहकती हुई आग का ताप दृष्टिगोचर हुआ है। वे लिखती हैं कि -

"आ रही है ताप/जल रही है कहीं कोई आग
आँच चेहरों पर चमकती है।"[8]

'दुःख के बादल' कविता में बताया है कि दुःख हमारे सोचने से होता है। यदि हम अपने मन में किसी बात के लिए दुख या शोक करते हैं तो यह हमारे मन में होता है। वास्तविक अर्थों में उतना नहीं जितना कि हम सोचते हैं। दुःख हमारे शोक और अवसाद रूपी हिमखंड को पिघलाकर सुख की अनुभूति प्रदान करता है। 'जीवन की गति (एक)' में त्रिलोचन की सॉनेट की परम्परा देखने को मिलती है। नैतिकता के मूल्य स्थिर नहीं होते, बल्कि हमेशा गतिमान रहते हैं। हमें अपने लक्ष्य की उड़ान आसमान से भी ऊँची रखनी चाहिए, क्योंकि यह सारा संसार चिरकाल से गतिमान है। इस धरती पर रहने वाला प्रत्येक मानव समुदाय दुनिया की प्रकृति का ही विस्तार है जो अपने नियमों, गति और अपनी सुन्दरता में विशिष्ट महत्त्व रखता है। 'जीवन की गति (दो)' में जीवन की गति में आने वाले अवरोधों से संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं तथा मृत्यु के बारे में न सोचकर हमेशा अपने कर्तव्य पथ पर अड़े रहना ही जीवन की सार्थकता मानती हैं। किसी बात या किन्हीं चीज़ों के खोने पर पश्चाताप किये बगैर ही अपने जीवन-मूल्य को समझना चाहिए। कविता का एक अंश दृष्टव्य है -

"जीवन है गतिमान दृष्टि को गतिज बनाओ
मत बाँधो सुन्दरता को जड़ मानक द्वारा
नैतिकता के मूल्य भी भला कैसे थिर हों
अपनी दृष्टि उड़न-लक्ष्य तुम क्षितिज बनाओ।"[9]

संग्रह की लगभग सभी कविताएँ अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखती हैं। चूँकि प्रत्येक कविता एक दूसरी कविता से भिन्न है तथा किसी विशेष विषय वस्तु पर केन्द्रित है। संग्रह में ऐसी बहुत सी कविताएँ हैं जो हमारे देश-दुनिया के साथ-साथ पारिवारिक संबंधों और समाज में व्याप्त कुरीतियों और असामाजिक तत्वों पर कुठाराघात करती हैं। साहित्य और समाज को इन समस्याओं से वाक़िफ़ कराती हैं तथा इनके समाधानों की ओर इशारा भी करती हैं। मीना बुद्धिराजा कात्यायनी की कविताओं के सन्दर्भ में लिखती हैं कि "इक्कीसवीं सदी में सत्ता, राजनीति, समाज, संस्कृति और शक्ति तंत्र की संरचनाओं के सम्मुख मानव की नियति को अभिव्यक्त करने वाले जो कठिन प्रश्न और मुद्दे उठे हैं, उनकी सबसे सार्थक, ज्वलंत और सशक्त अभिव्यक्ति करने में समर्थ और सक्षम कवयित्रियों में 'कात्यायनी' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"[10]एक प्रकार से देखा जाए तो कात्यायनी का यह संग्रह समकालीन हिंदी कविता में काफी महत्वपूर्ण साबित होता है।

कात्यायनी की कविताओं में राजनैतिक सत्ता के कुतंत्र और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ प्रतिरोध की भाषा का सृजन हुआ है।उन्होंने कविता में संभ्रांत और आभिजात्यपूर्ण भाषा को लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास किया है। एक ऐसी भाषा जो सामान्य पाठक वर्ग के मन-मष्तिष्क पर सीधा प्रभाव छोड़ती है। कात्यायनी की कविताओं के भाषायी शिल्प के सन्दर्भ में मीना बुद्धिराजा का मानना है कि "उनमें एक उत्पीड़ित मनुष्यता का संघर्ष है जिसे एक स्त्री के शिल्प मे व्यक्त किया गया है और इस शिल्प मे एक गहरी लोकतांत्रिक चेतना है जो स्मृति और स्वप्न के पारम्परिक बिम्बों को भेदती हुई, कविता को ज़्यादा आमफहम, ज़्यादा सामाजिक बनाती है।"[11] हिंदी-अंग्रेज़ी के साथ देशज शब्दों के प्रयोग का सामंजस्य कविताओं की रोचकता और पठनीयता को बढ़ाने में मददगार साबित हुआ है। इन कविताओं में लाग-लपेट के बजाय सीधे-सीधे अपनी बात को रखने वाली सरल और स्पष्ट भाषा का प्रयोग कविताओं को अधिक प्रभावशाली बनाता है।

सन्दर्भ-सूची:-

1. कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चम्पा, परिकल्पना प्रकाशन, डी-68, निरालानगर, लखनऊ, तीसरा संस्करण-2008, पृष्ठ-30
2. वही, पृष्ठ-31
3. वही, पृष्ठ-34

4. वही, पृष्ठ-54
5. वही, पृष्ठ-51
6. वही, पृष्ठ-61-61
7. वही, पृष्ठ-93
8. वही, पृष्ठ-99
9. वही, पृष्ठ-103
10. https//samalochan-blogspot-com@2018@02@blog&post&3-html
11. https//samalochan-blogspot-com@2018@02@blog&post&3-html

◆पी-एच.डी. शोध-छात्रा, हिन्दी विभाग
डॉक्टर हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर
(म.प्र.) 470003
ई.मेल:- sindhusuta2293@gmail.com
फोन: 7908070924

सामाजिक बोध :दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय व सूरजपाल चौहान जी की नज़रों में

◆सुधा जे

मोहनदास नैमिशराय एक दलित साहित्यकार हैं। उन्होने अपने साहित्य में दलित जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है। दलित जीवन की पीड़ा, आत्मसम्मान केलिए होनेवाले संघर्ष,दलित नारी का शोषण, दलितों पर होनेवाले अत्याचार, वेश्या जीवन की समस्या, ऐतिहासिक पात्र झलकारी बाई की वीरता, हिन्दू-मुस्लिम के सांप्रदायिक दंगे आदि का चित्रण किया है।

सूरजपाल सिंह चौहान जी ने दलित साहित्य चेतना से युक्त साहित्य का सृजन किया है। वह हमारी साहित्यिक परम्पराओं से हटकर एक विशेष चेतना से युक्त साहित्य है। उनका कहानी संग्रह दलित कथा साहित्य का एक सुपरिचित हस्ताक्षर है। उनके कहानी संग्रहों में सामाजिक परिवर्तन, न्याय, समता, यथार्थ, लौकिक एवं वैज्ञानिक प्रतिमानों को आधार मानकर तथा मनुवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह,दलित व्यथा,भोगे हुए यथार्थ, सामंती आतंक एवं अत्याचार का विरोध आदि को जन-जन तक पहुँचने का प्रयास किया है|

उनकी आत्मकथा 'तिरस्कृत' और 'संतप्त' में भेदभाव एवं तिरस्कृत वर्ण-व्यवस्था को चित्रित किया है । इसमें दलित मुक्ति का चित्रण भी किया है। लेखक की मार्मिक वेदना के बारे में प्रो.काशीनाथ सिंह लिखते हैं, 'तिरस्कृत' यदि तिरस्कृत होने की आत्मकथा है तो 'संतप्त' तिरस्कृत होने के संताप की। तिरस्कृत अपने गाँव से,अपने मुहल्लों से अपने स्कूल और कॉलेजों से, अपने कार्यालयों और अफसरों से- इन सारे तिरस्कारों का मुकाबला किया जा सकता है परिवार साथ हों, भाई साथ हो, रिश्तेदार-नातेदार साथ हों । लेकिन उस संताप का कोई क्या करे जिसे तमाम लोगों के सिवा पत्नी और बेटे तक तिरस्कारने दिया हो ।"(1) यहाँ लेखक की भोगी हुई यातनाएँ पाठक समझ सकते हैं ।

नैमिशराय जी की आत्मकथा तीन भागों में प्रकशित हो चुकी है। इसमें लेखक ने समाज से हुए अनुभव,दलितों के अहसास के अनुभव हर जगह से हुए अपमान-तिरस्कार आदि पर प्रकाश डाला है। उन्होंने दो से अधिक कहानी संग्रह और पाँच से अधिक उपन्यास भी लिखे हैं। दलित जागरण के बाद दलितों की स्थिति एवं अत्याचार,शोषण के विरुद्ध

उत्तर देने की क्षमता को भी उजागर किया है। पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित किये हैं । उसमें दलितों पर चल रहे अत्याचारों, शोषणों एवं दलितों की दयनीय स्थितियाँ, अत्याचार के खिलाफ एवं दलितों के अधिकारों के प्रति आवाज़ें उठाने के प्रयास भी किये हैं। उनकी आवाज़ें 'कहानी में दलितों के खिलाफ किए गए अत्याचार का भीषण रूप दिखाया गया है। ठाकुर औतार सिंह का अपमान करने पर ठाकुर के करिंदे रात को मेहतरों की बस्ती में आग लगवा देते हैं। जैसे कि "आधी रात का समय रहा होगा। मेहतरों के टोले में आग की लपटें देखी गयीं जब लपलपाती हुई ऊँची होने लगी थी। शराब में धूत किसी को होश न था।जब होश आया तो वे सबकुछ गँवा चुके थे। किसी के चार सूअर थे,तो चारों ही झुलस गए थे। बच्चों तक को आग ने माफ न किया था । कितनी ही औरतों के गोरे शरीर जलकर बदरंग हो गए थे। बस्ती में कोई घर ऐसा न था जिसमें कोई न मरा हो। बस्ती जैसे किसी आग की घाटी में बदल गयी थी। आग की चिंगारी के साथ-साथ कोलाहल भी इधर-उधर बिखर गया था "(2) इसप्रकार का तीव्र अत्याचार हमेशा दलितों पर होता है जिसका यथार्थ अंकन मोहनदास नैमिशराय ने किया है।

चौहानजी दलित एकता के प्रति समर्पित रचनाकार हैं। उनकी विचारधारा डॉ.अम्बेडकर के शिक्षा धर्म पर आधारित है। चौहान का साहित्य भी नैमिशराय जी के समान अनुभूति की सच्चाई को लेकर लिखा गया साहित्य है। उनकी 'धोखा' कहानी दलित जीवन समस्याओं से सम्बन्धित है। बजरंग बिहारी तिवारी ने 'धोखा 'कहानी संग्रह की भूमिका में इसप्रकार लिखा है कि "प्रतिबद्धता प्रायः कुछ चीज़ों को छुपा ले जाती है। दुनिया भर पर रोशनी डालती है, फटकारती है, लेकिन खुद को कभी प्रकाश वृत्त में नहीं लाती,स्वपरीक्षण नहीं करती।"(3)

मोहनदास नैमिशराय जी ने अपनी 'आवाज़ें' कहानी में सवर्ण जाति के खिलाफ हुँकार भरते हैं:- "हाँ हमारे बड़े-बूढ़े जब करते थे वो ज़माना चला गया। भाई अब नया ज़माना है, नई रोशनी आ गयी है। "(4) यहाँ लेखक ने ऊँची जातियों के प्रति विरोध प्रकट किया है। सूरजपाल चौहानजी भी अपनी रचनाओं में सवर्ण समाज के अन्याय के विरोध की बात कही है। 'प्रयास क्यों विश्वास करुँ' कविता में ब्रह्माडंबर धर्मान्धिता, अमानवीयता, अत्याचार, अन्याय के प्रति अविश्वास आदि प्रकट किये गये हैं। 'कब होगी वह भोर में' दलित समाज की अज्ञान रूपी, अंधेरे को हटाकर ज्ञान रुपी प्रकाश में जीने का प्रयास कब करेगा इनका चित्रण है। इसके माध्यम से लेखक दलित समुदाय की प्रगति की चिंता करते हैं।

नैमिशराय कृत 'अपना गाँव' कहानी में जातीय चेतना दिखाई देती है। इस कहानी में एक दलित महिला को गाँव के भूमिपतियों ने पूरे गाँव में नंगा घुमाया। उसके पति ने ठाकुर से पाँच सौ रुपये उधर लिए थे। उसके बदले उसने ठाकुर की हवेली में गुलामी करने से मना कर दिया और कहा,मैं ने किसी से कोई करज-वरज नई लिया जिसने लिया है वही देगा भी।"(5)वह मेट्रिक पास दलित औरत थी। उसके मन में चेतना थी। इसलिए वह प्रतिरोध करने लगी क्योंकि दलित लोग गुलामी के लम्बे इतिहास के दुष्चक्र से मुक्ति चाहते थे। नई पीढ़ी डॉ.अंबेडकर के जीवन-दर्शन से प्रेरणा पाकर जातिभेद के जंजीरों को तोड़कर आगे बढ़ने की कोशिश करते है। इस कहानी के द्वारा लेखक ने दलित समाज के सामजिक बोध की ओर इशारा किया है।

'हारे लोग'कहानी के चेतराम कुरील पढ़े-लिखे दलित युवा थे और बड़े पदों पर रहनेवाले व्यक्ति भी थे। फिर भी दलित होने के कारण शहर में उनको रहने केलिए किराये का मकान नहीं मिला। यहाँ लेखक जाति व्यवस्था के अलग पक्ष को दिखाते हैं। कुरील ने जब शर्माजी के एक परिचित व्यक्ति का मकान किराये पर माँगा तो वह बोला, "देखो जी, आप हमारी जात-बिरादरी के हो तो कमरा दिखाऊँ...वरना..."(6) उन्होंने इसलिए ऐसा कहा कि उन्हें पता था कि वह दलित है। यहाँ जाति व्यवस्था के सामाजिक पक्ष को

उजागर किया गया है। एक दिन आर.के.शर्मा के साथ कुरील जब दलितों के नेता,भट्टाचार्य से मिलने गए तो उनका भाषण सुनकर क्रुद्ध हुए। भाषण में भट्टाचर्य ने व्यक्त किया है कि शहर में कोई जात-पाँत नहीं है। लेकिन व्यवहार में वह ठीक उल्टा था। इसकारण मकान को उसे कुरील को देना ही पडेगा। नहीं तो भाषण में कही गई बात को उसे वापस लेना पडेगा।

चौहान जी की कहानी 'बदबू' में प्रतिरोध का स्वर देख सकते है। कहानी की नायिका संतोष है जो अपने समाज में ज़्यादा पढ़ी-लिखी लड़की थी। उसकी शादी नौवीं पास लड़के के साथ हुई। शादी के कुछ दिनों बाद ही उसकी सास मलमूत्र लेने केलिए भेजती हैं। वह गन्दगी उठाने का विरोध करती है। फिर भी वह मैला उठाने केलिए भेज देती हैं। इस कहानी में इस विमर्श को लेखक प्रस्तुत करते हैं कि पढ़ी-लिखी युवा पीढ़ी में मैला कमानेवाले पेशे के प्रति प्रतिरोध की आवाज़ें बुलंद हो रही हैं।

मोहनदास नैमिशराय एवं सूरजपाल चौहानजी के साहित्य में सामान्यतः दलित साहित्य के आक्रोश की बात बताई गयी है। दोनों के साहित्य में दलितों की पीड़ा, धुटन, अत्याचार, शोषण के विविध रूप देखने को मिलते है। 'हैरी कब आएगा, नया ब्राह्मण एवं छू नहीं सकता, तिरस्कृत, संतप्त, प्रयास क्यों विश्वास करुँ, कब होगी वह भोर, प्रयास मातादीन, बच्चे सच्चे किस्से, बाल मधुर गीत आदि रचनाओं में चौहान जी ने सामान्य रूप से समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया है।

नैमिष जी का साहित्य देखें तो अपने अपने पिंछरे भाग 1, भाग 2, भाग 3, मुक्तिपर्व, क्या मुझे खरीदोगे, वीरांगना झलकारी बायीं, आज बाजार बंद है, महानायक डॉ.बाबा साहब अंबेडकर, जख्म हमारे, हमारा जवाब, आवाज़ें, सफ़रनाम एक बयान, आग और आंदोलन आदि में दलित समाज की बस्तियों का मार्मिक चित्रण है। उन्होने ग्रामीण दलितों के पिछड़े जीवन-यापन का निश्चित रूप से वर्णन किया है। 'वीरांगना झलकारी बाई' में स्वतंत्रता-संग्राम के पश्चात एक समय में अपने समाज एवं देश केलिए लड़नेवाली दलित समाज की वीरांगना का चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है। इसलिए कहा जा सकता है कि दोनों साहित्यकारों के साहित्य में विशेष तथा सामान्य रूप से दलित समाज का चित्रण देखने को मिलता है। यानि दोनों सामान रूप से दलित समाज की चेतना को उजागर करने का प्रयास करते हैं। चौहान जी के ‘नया ब्राह्मण' में दलित समाज के अंदर मौजूद वत्मीकि (भंगी) एवं जाटव (चमार) जाति के अंतर्विरोधों का उल्लेख है। 'छू नहीं सकता'नामक रचना में "दलित समाज की समस्याओं को स्पष्ट तर्कपूर्ण एवं रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया है।यह बाबा साहब अंबेडकर की जीवन-शैली पर आधारित है। उसमें क्लास में सवाल पूछा जाता है वह कौन सी चीज़ है । जिसे हम देख सकते हैं,पर छू नहीं सकते? यह छोटा-सा जवाब भारतीय समाज में चले आ रहे छुआ-छूत का दर्शन कराता है। साथ ही साथ उनकी मार्मिक पीड़ा को उजागर किया है। "(7) भड़णिया विक्रम के इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि दलित समाज जाति व्यवस्था से पीड़ित है।

अतः कहा जा सकता है कि मोहनदास नैमिशराय एवं सूरजपाल चौहानजी के साहित्य का अध्ययन करते समय दलित समाज पर हो रहे अत्याचार,वर्ण व्यवस्था, जातिभेद आदि पर ध्यान दिया गया है। साथ ही दलित समाज में चेतना लाने का प्रयास भी दोनों ने किया है जो सर्वथा सार्थक सिद्ध है।

सन्दर्भ सूची :

1.संतप्त-सूरजपाल चौहान, भूमिका; राधाकृष्ण प्रकाशन, 2006.

2.आवाज़ें-मोहनदास नैमिशराय,पृ सं 23; नटराज प्रकाशन, 1998

3.धोखा-सूरजपाल चौहान,पृ सं 9; वाणी प्रकाशन,2011

4.आवाज़ें-मोहनदास नैमिशराय,पृ सं 19 ; नटराज प्रकाशन,1998
5.अपना गांव-मोहनदास नैमिशराय,पृ सं 37, वही
6.आवाज़ें-मोहनदास नैमिशराय, पृ सं 71, वही
7.हिंदी साहित्य में दलित विमर्श,भड़णिया विक्रम, पृ सं 62 ; नवभारत प्रकाशन, 2015

◆ शोधार्थी
सरकारी महिला कॉलेज , तिरुवनंतपुरम
फोन: 99416973391

थोरो की एक समृद्ध राज्य की दृष्टि : आधुनिक भारतीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार

◆डॉ. सुशांत कुमार दुबे

सारांश

हेनरी डेविड थोरो (1817–1862) एक महान अमेरिकी निबंधकार, विचारक और सामाजिक दार्शनिक थे, जिन्होंने शासन और नागरिक के संबंधों पर गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान की। उनका प्रसिद्ध निबंध 'सविनय अवज्ञा' (1849) न केवल अन्यायपूर्ण शासन के विरुद्ध नागरिक प्रतिरोध का नैतिक सिद्धांत प्रस्तुत करता है, बल्कि एक ऐसे राज्य की परिकल्पना भी करता है जो न्याय, समानता, स्वतंत्रता और अंतरात्मा के सिद्धांतों पर आधारित हो।

थोरो के विचारों का प्रभाव भारत के स्वतंत्रता आंदोलन और महात्मा गांधी के अहिंसक प्रतिरोध के दर्शन पर गहराई से पड़ा। यह शोधपत्र थोरो की राज्य-दृष्टि का विश्लेषण करता है और यह दिखाता है कि उनके विचार आज भी भारतीय लोकतंत्र, संविधान, नागरिक आंदोलनों और समकालीन शासन के लिए कितने प्रासंगिक हैं। सविनय अवज्ञा, नैतिक प्रतिरोध, अंतरात्मा की प्रधानता और नागरिक सहभागिता - इन सभी सिद्धांतों को आधुनिक भारत के संदर्भ में पुनर्विचार करते हुए यह अध्ययन दर्शाता है कि समृद्ध राज्य केवल वही हो सकता है जो नागरिकों की सक्रिय भागीदारी और नैतिक चेतना से संचालित हो।

कुंजी शब्द: थोरो, सविनय अवज्ञा, राज्य, नागरिक, गांधी, लोकतंत्र, नैतिक शासन

प्रस्तावना : राज्य और नागरिक संबंधों पर थोरो की दृष्टि

राज्य और नागरिकों के संबंधों को समझना राजनीतिक चिंतन का शाश्वत प्रश्न रहा है। अरस्तू ने राज्य को मानव जीवन का नैसर्गिक विस्तार माना, जबकि लॉक और रूसो ने इसे सामाजिक अनुबंध का परिणाम बताया। हेनरी डेविड थोरो इस परंपरा में एक नई दिशा जोड़ते हैं- उनके अनुसार राज्य का अस्तित्व तभी सार्थक है जब वह नागरिकों के विवेक, अंतरात्मा और नैतिकता का सम्मान करे।

थोरो अपने युग में अमेरिकी समाज की अन्यायपूर्ण नीतियों, विशेषकर दासता और मैक्सिको युद्ध, के प्रखर आलोचक थे। उनका मानना था कि जब शासन नैतिकता से भटक जाता है, तब नागरिकों का कर्तव्य है कि वे उसके आदेशों का उल्लंघन करें। "वह सरकार सबसे अच्छी है जो कम से कम शासन करती है"- उनका यह विचार केवल प्रशासनिक न्यूनतावाद नहीं, बल्कि नागरिकों के नैतिक और राजनीतिक परिपक्वता पर आधारित शासन की अवधारणा है।

सविनय अवज्ञा: नैतिक प्रतिरोध का दर्शन

थोरो के अनुसार, राज्य का अधिकार पूर्ण नहीं है। यदि राज्य नागरिकों से अन्यायपूर्ण कार्यों की अपेक्षा करता है, तो उनका नैतिक कर्तव्य है कि वे उसका विरोध करें। यह विरोध हिंसक नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण और अहिंसक होना चाहिए — यही सविनय अवज्ञा

का मूल है।
थोरो स्वयं कर नहीं चुकाते थे क्योंकि उस कर का उपयोग दासता और युद्ध को समर्थन देने के लिए होता था। इसके परिणामस्वरूप उन्हें जेल जाना पड़ा, पर उन्होंने इसे "नैतिक स्वतंत्रता" के लिए आवश्यक मूल्य माना। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी ने थोरो के इसी सिद्धांत को अपनाया। गांधीजी ने स्वीकार किया था कि उन्होंने सविनय अवज्ञा से गहरी प्रेरणा ली। भारत छोड़ो आंदोलन, नमक सत्याग्रह और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार जैसे आंदोलनों ने दिखाया कि कैसे अहिंसक प्रतिरोध भी शासन को चुनौती दे सकता है और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन सकता है।

अंतरात्मा बनाम बहुमत : लोकतंत्र की नैतिक परीक्षा

थोरो बहुमतवादी लोकतंत्र की सीमाओं को रेखांकित करते हैं। वे पूछते हैं – "क्या एक ऐसी सरकार नहीं हो सकती जिसमें बहुमत सही और गलत का निर्णय न करे, बल्कि अंतरात्मा करे?" यह प्रश्न आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

भारत में भी लोकतंत्र अक्सर बहुमत की राजनीति में सिमट जाता है, जहाँ संख्यात्मक वर्चस्व को नैतिक वैधता मान ली जाती है। परंतु भारतीय संविधान न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों पर आधारित है, जो किसी भी बहुमत से ऊपर हैं।

अनुच्छेद 14 (समानता), अनुच्छेद 19 (अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) और अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) यह सुनिश्चित करते हैं कि शासन का हर निर्णय नागरिकों की गरिमा और अधिकारों का सम्मान करे।

थोरो का विचार इस संदर्भ में लोकतंत्र के लिए एक नैतिक कसौटी प्रस्तुत करता है – बहुमत को भी अपने निर्णयों को अंतरात्मा और न्याय के तराजू पर परखना चाहिए। नागरिकों को भी केवल मतदान तक सीमित न रहकर शासन की नीतियों की नैतिक समीक्षा करनी चाहिए।

राज्य, पूँजी और नागरिक अधिकार : भारतीय सन्दर्भ में

थोरो पूंजीवादी राज्य की आलोचना करते हुए कहते हैं कि राज्य नागरिकों को "मशीनों" की तरह इस्तेमाल करता है। यह विचार भारत में भी प्रासंगिक है। आधुनिक भारत में जब निजीकरण, वैश्वीकरण और कॉर्पोरेट हित शासन की नीतियों को प्रभावित करते हैं, तब नागरिक अधिकारों का हनन एक गंभीर चिंता बन जाता है।

उदाहरण के लिए- भूमि अधिग्रहण कानून, श्रम कानूनों में संशोधन और पर्यावरणीय नियमों में ढील जैसे कदम कई बार आम नागरिकों की आवाज़ को दबाते हैं। ऐसे में थोरो का आग्रह — कि नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए खड़े हों — अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारत में किसानों के आंदोलन (2020–21) ने यही दिखाया कि जब शासन नागरिकों के हितों को अनदेखा करता है, तो अहिंसक और संगठित प्रतिरोध से नीतियों में परिवर्तन लाया जा सकता है। यह आंदोलन सविनय अवज्ञा के आधुनिक उदाहरणों में से एक था।

क्रांति और सामाजिक परिवर्तन : थोरो से गांधी तक

थोरो कहते हैं, "सभी मनुष्य क्रांति के अधिकार को स्वीकार करते हैं।" यह विचार गांधी के दर्शन में भी प्रतिध्वनित होता है। गांधी ने 'सत्याग्रह' के माध्यम से यह दिखाया कि क्रांति केवल हिंसक संघर्ष नहीं, बल्कि नैतिक परिवर्तन की प्रक्रिया भी हो सकती है।

भारतीय संविधान भी इस विचार को स्वीकार करता है। अनुच्छेद 19 नागरिकों को शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने और विरोध प्रदर्शन करने का अधिकार देता है। यह अधिकार नागरिकों को शासन की नीतियों पर प्रश्न उठाने और उनमें सुधार की माँग करने की शक्ति प्रदान करता है।

समकालीन भारत में नागरिक समाज और छात्र आंदोलनों – जैसे शाहीन बाग, सीएए विरोध प्रदर्शन, पर्यावरणीय आंदोलन आदि – ने यह सिद्ध किया है कि लोकतंत्र की सेहत नागरिकों की सक्रिय भागीदारी

और नैतिक प्रतिरोध पर निर्भर करती है। ये आंदोलन थोरो के विचारों की जीवित मिसाल हैं।

मतदान और कराधान : अधिकार से आगे जिम्मेदारी तक

थोरो मतदान को "इच्छा की कमज़ोर अभिव्यक्ति" कहते हैं। भारत जैसे लोकतंत्र में भी केवल मतदान करना पर्याप्त नहीं है।

नागरिकों को चुनाव के बाद भी शासन के निर्णयों की निगरानी करनी चाहिए, जनमत तैयार करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर प्रतिरोध करना चाहिए।

कराधान के विषय में थोरो का विचार और भी प्रासंगिक है। वे कहते हैं कि यदि करों का उपयोग अन्यायपूर्ण उद्देश्यों के लिए हो रहा है, तो नागरिकों को इसका विरोध करना चाहिए। भारत में भी कर राजस्व का उपयोग सार्वजनिक कल्याण के लिए हो, यह सुनिश्चित करना नागरिकों और नागरिक समाज का कर्तव्य है।

उदाहरण के लिए, जब कर राजस्व का उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा की बजाय असंगत परियोजनाओं पर किया जाता है, तब नागरिकों का दायित्व बनता है कि वे जवाबदेही की माँग करें। यही सक्रिय नागरिकता थोरो की दृष्टि में समृद्ध राज्य की पहचान है।

समकालीन लोकतंत्र के लिए थोरो के विचारों की प्रासंगिकता

थोरो के विचार आज भी लोकतांत्रिक शासन को दिशा प्रदान कर सकते हैं। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में शासन और नागरिकों के बीच संवाद अक्सर सीमित हो जाता है। सरकारें बहुमत के सहारे निर्णय लेती हैं, परंतु इन निर्णयों की नैतिक वैधता पर चर्चा कम होती है।

थोरो हमें याद दिलाते हैं कि शासन की शक्ति नागरिकों से आती है, और नागरिकों की अंतरात्मा शासन से श्रेष्ठ है। सशक्त राज्य वही है जो नागरिकों को नियंत्रित नहीं करता, बल्कि उन्हें निर्णय-प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाता है।

आज जब भारत और विश्व लोकतंत्र में "लोकतांत्रिक थकान" (democratic fatigue) और "नागरिक उदासीनता" जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं, तब थोरो का दर्शन एक नया रास्ता दिखाता है – शासन और नागरिकों के बीच नैतिक संवाद और सक्रिय सहभागिता के माध्यम से एक अधिक न्यायपूर्ण और समृद्ध राज्य का निर्माण हो सकता है।

निष्कर्ष

थोरो की राज्य-दृष्टि केवल उन्नीसवीं सदी के अमेरिका के लिए नहीं, बल्कि इक्कीसवीं सदी के भारत और विश्व के लिए भी मार्गदर्शक है। वे हमें सिखाते हैं कि राज्य का असली उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि नागरिकों की अंतरात्मा और नैतिक चेतना को जागृत करना है।

भारत का संविधान भी इसी विचार को प्रतिबिंबित करता है – एक ऐसा राज्य जो नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करता है और उन्हें शासन में भागीदारी का अवसर देता है। गांधी, नेहरू और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने थोरो के विचारों को भारत के राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों में अपनाकर यह दिखाया कि नैतिक प्रतिरोध और सविनय अवज्ञा से भी बड़े परिवर्तन लाए जा सकते हैं।

आज भी जब लोकतंत्र कई चुनौतियों का सामना कर रहा है- जैसे सामाजिक असमानता, पर्यावरणीय संकट, और नागरिक अधिकारों पर अंकुश - तब थोरो का दर्शन हमें समाधान की दिशा दिखाता है। एक समृद्ध राज्य वही है जिसमें नागरिक शासन के निष्क्रिय विषय नहीं, बल्कि सक्रिय, विवेकवान और नैतिक सहनिर्माता होते हैं। यही वह राज्य है जो न केवल राजनीतिक रूप से शक्तिशाली होगा, बल्कि नैतिक रूप से भी वैध, न्यायपूर्ण और स्थायी होगा।

संदर्भ

1. हेनरी डेविड थोरो। सविनय अवज्ञा। 1849.
2. अरस्तू। राजनीति। फिंगरप्रिंट पब्लिकेशन, 2021.
3. जोसेफ कमिंस। इतिहास में महान प्रतिद्वंद्वी: जब

राजनीति व्यक्तिगत हो जाती है। थंडर बे प्रेस, 2013.
4. जॉन आर। लोकतंत्र और अच्छाई: एक ऐतिहासिक राजनीतिक सिद्धांत। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018.
5. हेनरी डेविड थोरो। वाल्डेन। 2016.
6. गांधी, मोहनदास करमचंद। हिंद स्वराज। नवजीवन प्रकाशन, 1909.
7. अंबेडकर, बी.आर. भारतीय संविधान और लोकतंत्र। भारत सरकार प्रकाशन, 1950.

◆सहायक प्रोफेसर, फ्रेंच
एमिटी यूनिवर्सिटी, पटना
ई.मेल : vikashsushant@gmail.com
फोन : 7061921682

राम भक्ति काव्य परंपरा में मुस्लिमों का योगदान

('गंगा जमुनी तहजीब' की मनोभाषिकता के विशेष संदर्भ में)

◆दीपेन्द्र कुमार ◆◆प्रो. गंगाधर वानोडे ◆◆◆प्रो. टी. कमलाबती देवी

सारांश - भारत 'गंगा-जमुनी तहजीब' की संस्कृति पर आधारित एक बहुभाषी देश है। भगवान राम और रहीम की मान्यता को यहाँ 'गंगा जमुनी तहजीब' का नाम दिया जाता है। 'गंगा-जमुनी तहजीब' सामान्य रूप में हिंदू और मुस्लिम समाज की उस मिश्रित संस्कृति के संगम का नाम है जहाँ दोनों ही समुदाय के लोग एक-दूसरे के साथ घुलमिल कर रहते हैं और अपने-अपने धार्मिक आयोजनों के साथ सामाजिक रीतियों एवं परंपराओं को निभाते हैं। हिंदू और मुस्लिम दोनों ही समुदायों के लोगों ने सदियों से भारत में रहते हुए अपनी संस्कृति को निभाया है बल्कि एक दूसरों के धर्म में समर्पण भाव भी प्रस्तुत किया है। इस आलेख के माध्यम से भगवान श्रीराम के प्रति मुस्लिम रचनाकारों की व्यक्त मनोभाषिक रचनाओं में प्रस्तुत आस्था का भाव प्रदर्शित किया गया है, जो कि परंपरागत रूप से चला आ रहा है, जिसमें मुस्लिम साहित्यकारों द्वारा भगवान श्रीराम के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का भाव प्रदर्शित किया गया है।

बीज शब्द - भगवान, मुस्लिम, इस्लाम, साहित्यकार, रचनाकार, रामभक्ति, समाज, आस्था, मनोभाषिकता, गंगा जमुनी तहजीब, मनोभावना।

आलेख- हिंदू और मुस्लिम रचनाकारों द्वारा 'गंगा जमुनी तहजीब' में 'राम-रहीम' की समानता द्वारा भाईचारे का संदेश दिया जाता है। दोनों ही समुदाय एक-दूसरे की धार्मिक भावना व आस्था का पूरा सम्मान व समर्थन देते हैं। यहाँ के मुस्लिम को राम में रहीम और हिंदुओं को रहीम में राम का दीदार होना धार्मिक सौहार्द की मनोभाषिकता को बिंबित करता दिखाई देता है। धर्म कोई भी हो आस्था रचनाकारों एवं विद्वानों के मन में रमी होती है, इसी आधार पर कुछ रचनाकारों का श्रीराम में अपनी धार्मिक आस्था जो सम्मान का भाव अर्पित किया उस पर यहाँ चर्चा की गई है। 'गंगा जमुनी तहजीब' को चलायमान रखने वाले मुस्लिम समुदाय के रचनाकारों की मनोभाषिकता में एक ओर जहाँ रामकाव्य को बल मिला है वहीं दूसरी ओर रामकाव्य की रामभक्ति को भी विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। इन महान रचनाकारों ने अपनी धार्मिकता में जहाँ राम के प्रति आस्था दिखाई है, तो वहीं अपने इस्लाम के नमाज़, रोज़े और इबादत के प्रति भी सच्चे समर्पण भाव को अदायगी की मिसाल दी है।

मुस्लिम रचनाकारों की बात की जाए तो भक्ति महाकाव्य श्रीरामचरितमानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी से लगभग 250 वर्ष पूर्व सूफी संत निजामुद्दीन ओलिमा के शिष्य अमीर खुसरो हुए। रामकाव्य योगदान एवं मुस्लिम रचनाकारों की समर्पित श्रद्धा मनोभाषिक में अमीर खुसरो का नाम अदब से लिया जाता है। इन्होंने हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदायों की संस्कृतियों में अपने को सरोबार किया। अमीर खुसरो ने अपनी प्रसिद्ध किताब 'नुहसिफ्र' में राम के प्रति श्रद्धा भाव का सर्मपण

प्रस्तुत किया गया है। अमीर खुसरो भारतीय संस्कृति अथवा 'गंगा जमुनी तहजीब' के सच्चे पुरोधा थे, अमीर खुसरो ने भगवान श्रीराम के प्रति आस्थावादी मनोभाषिकता मे 'नूह सिफर' पुस्तक में इस प्रकार से लिखा है-

'तन, मन, धन का वह है मालिक
वासे निकसे जीको काम
वो हम सब का मालिक राम'।

भगवान श्रीराम की समर्पित आस्था में मुस्लिम कवियत्री खातून सिद्दिकी द्वारा अपनी मनोभाषिकता को निम्नलिखित कथन के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। कवियत्री खातून सिद्दिकी लिखती हैं -

'रोम-रोम में रमा हुआ जो राम है।
निर्गुण भी है सगुण भी है वह अभिराम है।।
ह्यास मानवता का देख वह प्रगटित हुआ।
उस विभूति को श्रद्धा सहित प्रणाम है।।

राम भक्ति काव्य का प्रभाव, मुस्लिम कवियों पर इस प्रकार से देखा जा सकता है कि कई मुस्लिम कवि राम की रचना करते-करते राममय हो गए। उनकी दृष्टि से वे राम में रहीम को देखते हैं और रहीम में राम को। साथ ही इन मुस्लिम रचनाकारों ने रामकाव्य में रचना में तन्मय होकर स्वयं को राम की भक्तिमय साधना में विभोर किया। इनके लिए हिंदुओं के भगवान श्रीराम उनके लिए एक लाख चैबीस हज़ार नबियों में एक हैं जो कि मानवीय गुणों और कर्मों की शुद्धता के साथ धरती पर प्रकट हुए हैं। मुस्लिम रचनाकारों, कवियों एवं साहित्यकारों ने भगवान श्रीराम की चरित्र-गाथा के क्रम में रचनाएँ एवं भक्ति परंपराओं में आहुति दी है। मुस्लिम कवि रहीम भक्ति काल में गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन कवि थे। उन्होंने तुलसीदास की संगत में राम की भक्ति का सानिध्य भी प्राप्त किया। क्योंकि रहीम तुलसीदास जी के मित्र थे। अतः रहीम की कलम ने भगवान श्रीराम के प्रति भक्ति भाव को प्रदर्शित किया है। कवि रहीम के श्रद्धा भाव की मनोभाषिकता में भगवान श्रीराम की आस्था का समर्पण भाव दिखलाई देता है। श्रीराम एवं रामकाव्य की कढ़ी में रहीम लिखते हैं कि-

"रामचरित मानस विमल, संतन जीवन प्राण।
हिन्दुआन को वेद सम, यवनहीं प्रकट कुरान।।"

सनातन सभ्यता के आधार प्रभु श्रीराम की भक्ति जिस प्रकार से सदियों से चली आ रही है वैसे ही हिंदु एवं मुस्लिम रचनाकारों की रचनाओं, कविताओं आदि विधाओं द्वारा श्रीराम की स्तुति का क्रम निरंतर चलायमान रहा है। श्रीराम की इस भक्ति परंपरा में मुस्लिम रचनाकारों ने 'गंगा-जमुनी तहजीब' की विरासत को संजोते हुए रामकाव्य में अपनी भक्ति-रचना के श्रद्धा पुष्प अर्पित किए हैं। मुस्लिम कवियों के परंपरागत रूप से राम काव्य परंपरा में आस्था रखने का क्रम भी सदियों से चला आ रहा है। इन मुस्लिम रचनाकारों की मनोभाषिकता के संदर्भ में कहा जा सकता है कि 'गंगा-जमुनी तहजीब' के अंतर्गत वे हिंदू धर्म को महत्व देने एवं सामाजिक सौहार्द की भावना को संजोए हुए थे। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि वे हिंदू-मुस्लिम एकता की भावनाओं को सम्मान देने के लिए ऐसा करते रहे हैं। क्योंकि श्रीराम की आस्था में जहाँ उन्होंने रचनाओं में कलम चलाई है वहीं अपने इस्लाम धर्म के प्रति भी उनकी निष्ठा एवं नियम पालन में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई है।

रामचरितमानस महाकाव्य के रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी के समय के दौरान ही मुस्लिम समाज पर भगवान राम की भक्ति का प्रभाव दिखाई देता है। तुलसीदास की मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम की भक्ति समर्पित रचना 'श्रीरामचरितमानस' की कथा से उत्प्रेरित एवं प्रभावित होकर मुस्लिम रचनाकारों द्वारा सन् 1534 ई. में ही 'श्रीरामचरितमानस' का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया, जिसे 'रामायण फैजी' का नाम दिया। रामकाव्य की कथा की अनुवाद परंपरा में यह पहला फारसी अनुवाद है। श्रीरामकथा की अनुवाद यात्रा की श्रृंखला में सन् 1589 बादायूनी की रामकथा रचना 'रामायण फारसी' प्रकाश में आई,

जिसे काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। फारसी भाषा में ही 34 वर्षों के बाद सन् 1623 ई. में सादुल्लास मसीह की 'दास्ताने रामोसीता' ने फारसी की जनता में काफी लोकप्रियता हासिल की। जनता द्वारा 'दास्ताने रामोसीता' की रामकथा को काफी पसंद किया गया। इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियों को काफी मात्रा में प्रसारित किया गया। आज भी 'दास्ताने रामोसीता' की कथा की कई हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं। इन प्रतिलिपियों को ब्रिटिश म्यूज़ियम, इंडिया ऑफिस ग्रंथालय, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल और अलीगढ़ के ग्रंथालयों में आज भी सुरक्षित रूप में देखा जा सकता है। 'दास्ताने रामोसीता' की हस्तलिखित प्रतियों को सन् 1899 में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा भी प्रकाशित किया गया। सन् 1860 में अनुवाद यात्रा की श्रृंखला एवं 'गंगा जमुनी तहजीब' की परंपरा में श्रीरामकथा महाकाव्य 'श्रीरामचरितमानस' का उर्दू अनुवाद प्रकाशित हुआ। जनता द्वारा इस उर्दू संस्करण को हाथों-हाथ लिया। 'श्रीरामकथा' का यह उर्दू अनुवाद संस्करण इतना अधिक लोकप्रिय हुआ है कि 8 वर्षों से ही इसके सोलह संस्करण प्रकाशित हो गये। इसके बाद जनता की उर्दू भाषा की रामकथा में बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए पुनः इस 'श्रीरामचरितमानस' ग्रंथ का उर्दू अनुवाद 'रामायण ए फरहत नाज हर्फ ब हर्फ' के नाम से प्रकाशित किया गया। इसको भी जनता से सराहा गया और इसके भी सात संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। 1

मुस्लिम कवि मुहम्मद फैयाजुद्दीन अहमद ने तुलसी की रचना 'श्रीराचमरितमानस' की लोकप्रियता एवं तुलसी की मनोभाषिकता के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। उन्होंने तत्कालीन समय में रामकथा की प्रसिद्धि के संबंध में जो उद्गार प्रस्तुत किए हैं, उनसे भगवान श्रीराम की आस्था एवं भक्ति का तो तत्कालीन स्वरूप दिखाई देता ही है, साथ ही श्रीरामचरितमानस की लोकप्रियता का स्तर एवं भगवान राम की भक्ति एवं प्रभुता की मनोभाषिकता को स्पष्ट देखा जा सकता है-

'यह लुफ्ते खास है, यह फैजे आम तुलसी का
ये खासो आम का प्यारा है, राम तुलसी का
यह राम नाम से है, उनके प्यार की महिमा
की सर पे रखती है, दुनिया कलाम तुलसी का।[2]

मुस्लिम शायर मौलाना जफर अली खाँ ने अपनी शायरी में भगवान श्रीराम की भक्ति व सम्मान में अपनी मनोभाषिकता प्रकट की है। मौलाना साहब मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम को समूचे संसार का आदर्श मानते हैं। उनका मानना है कि यदि इस धरती पर यदि आज तहजीबे हुनर अर्थात् मर्यादा है तो भगवान श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के कारण ही हैं। वे अपनी भक्ति मनोभाषिकता में श्रीरामचरितमानस की कथा का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं। उनका मानना है कि दुनिया में आज राम, लक्ष्मण और सीता का धर्माचरण ही चलायमान है, जो कि सर्वोत्तम है -

'नक्शे तहजी बे हुनर अब भी नुमायां है अगर
तो वह राम से हैं, लक्ष्मण से है, सीता से है।

भगवान श्रीराम किसी एक धर्म अथवा संप्रदाय के न होकर संपूर्ण समाज के हैं। इसी परिपाटी में मुसलमान कवियों ने रामकथा पर प्रचुर मात्रा में अपना लेखन समर्पण किया है। मुस्लिम रचनाकारों के साहित्यिक योगदान से न केवल भगवान श्रीराम को वैश्विक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है, अपितु मुस्लिम रचनाकारों ने ही अपनी विरक्त भक्ति भावना की रचनाओं के माध्यम से भगवान श्रीराम की कथाओं की मार्मिकता को मुस्लिम समाज में प्रस्तुत करते हुए विश्व भर जगजाहिर करने में महत्वपूर्ण योगदान भी दिया है। भारत देश के आराध्य भगवान श्रीराम की भक्ति, आस्था एवं महत्व को सर मोहम्मद इकबाल उनकी मर्यादा एवं आदर्श की महानता का आधार मानते हैं। उनका मानता है कि भगवान श्रीराम से ही भारतीय संस्कृति का आज विश्व में स्थान है। सर

मोहम्मद इकबाल साहब भगवान श्रीराम की वैश्विकता के कारण ही भारत देश की प्रसिद्धि को विश्व में स्वीकार करते हैं-

'है राम के वजूद पे हिन्दुस्तां का नाज।

अहले नजर समझते हैं, हम उनको इमामे हिन्द।। [3]

भगवान श्रीराम का आस्तिक मनोभाषिकता का उत्कृष्ट उदाहरण उत्तर प्रदेश के तनवीर प्रसिद्ध शायर द्वारा प्रस्तुत किया गया है। रामभक्ति साहित्य में उन्होंने कई स्थानों पर रामभक्ति रचनाओं का साहित्यिक योगदान प्रस्तुत किया है। तनवीर साहब की रामभक्ति की मनोभाषिकता समर्पित आस्था एवं भक्ति भावना को निम्न प्रकार से महसूस किया जा सकता है-

डुबती किश्ती को उसकी, हो गया साहिल नसीब।

जिसने श्रद्धा से पुकारा, राम का शुभ नाम है।।[4]

भगवान श्रीराम के प्रति मुस्लिम साहित्यकारों ने अपनी सुरक्षा भावना की मनोभाषिकता को प्रदर्शित किया है। वर्तमान परिवेश में मुस्लिम साहित्यकारों ने राम की सार्थकता पर कई ग़ज़लें लिखी हैं। इन साहित्यकारों का मानना है कि वर्तमान दौर में समाज में फैली कुरीतियों और बुराइयों से रामभक्ति का सहारा ही बचा जा सकता है। भगवान श्रीराम की आदर्शवादी मनोभाषिकता के संबंध में मुस्लिम रचनाकार कमल अहमद ने भगवान श्रीराम को कल्याण का साधन बताया है। मुस्लिम साहित्यकारों ने वर्तमान परिवेश के लोगों की जीवन शैली एवं मनोभावना एवं मानसिकता से उत्थान के लिए राम भक्ति साधना को आवश्यक बताया है। उनका मानना है कि श्रीराम की शरण में जाने से ही श्रीराम सामाजिक व भौतिक समस्याओं से मार्गदर्शन कर सकते हैं। जीवन रूपी अंधकार के भटकाव से उजाला देने वाले श्रीराम ही हैं, कमल अहमद की निम्न पंक्तियों के माध्यम से सामाजिक चिंता एवं उसके उत्थान की मनोभाषिकता में श्रीराम की आवश्यकता को प्रस्तुत किया है-

दानव हिंसक रूप बनाकर, घुम रहे हैं घर घर जाकर,

मानवता को कँपा दिया है, रावण ने हुंकार सुनाकर,

मासूम सिसकती जनता के फिर, रक्षक बनकर आ जाओ,

जीवन पथ पर घोर तिमिर है, राम पुनः तुम आ जाओं।[5]

सनातन सभ्यता में श्रीराम की आस्था का प्रभाव मुस्लिम कवियों की मनोभाषिकता में स्पष्ट देखा जा सकता है। 'गंगा जमुनी तहजीब' भी इसी भाव का नाम है जो एक दूसरे की मनोभाषिकता को समझने महसूस करने एवं उसमें एक-दूसरे को सहयोग करने की दिशा में काम करते हैं। भगवान श्री राम की हिंदुओं में आस्था एवं विश्वास की आधारभूत महत्ता को मुस्लिम कवि भले प्रकार से समझते आए हैं। मुस्लिम साहित्यकार भगवान श्रीराम की भक्ति में हिंदुओं की आस्था का जिक्र अपनी रचनाओं में भी प्रायः करते रहे हैं, भगवान श्रीराम के प्रति हिंदुओं की अटूट श्रद्धा व आस्था पर प्रसिद्ध शायर सागर निजामी लिखते हैं-

हिंदियों के दिल में बाकी है, मुहब्बत राम की।

मिट नहीं सकती कयामत तक, हुकूमत राम की।।[6]

सनातन धर्म सभ्यता में श्रीराम की हुकूमत सदैव से रही है। हिंदुओं ने जहाँ अपनी इस भावना को सदैव से किसी न किसी रूप में प्रस्तुत किया है, वहीं मुस्लिम रचनाकारों ने भी अपनी रचनाओं एवं लेखनी के माध्यम इस बात की बानगी समय-समय पर दी है। मुस्लिम रचनाकारों ने राम की महत्ता न केवल समझी है, वरन् उसके लिए अपने विचार एवं मनोभाषिकता में यथानुसार रचनाओं की प्रस्तुति भी समाज को उपलब्ध कराई है। हिंदुओं की आस्था एवं विश्वास की इस भक्ति ऋंखला में न केवल मुस्लिम बल्कि अन्य धर्म के विद्वान रचनाकारों ने भी अपनी लेखनी से भगवान राम के चरित्र एवं वैभव को दिशा प्रदान की है।

निष्कर्ष– उक्त से स्पष्ट है कि रामकाव्य भक्ति परंपरा में मुस्लिमों का योगदान आधारभूत रहा है। जिसके कारण ही 'गंगा जमुनी तहजीब' की मनोभाषिकता का उदय हुआ है। मुस्लिम रचनाकारों की आस्था इस्लाम धर्म के साथ ही भगवान श्रीराम के साथ भी बनी रही है। इन रचनाकारों की उन्नत मनोभाषिकता ने ही'गंगा जमुनी तहजीब' को अविकल एवं पारदर्शी

भक्तिपूर्ण साहित्यक योगदान दिया है। सनातन धर्म सभ्यता के आधार व हिंदुओं के गौरव, भगवान श्रीराम के वर्तमान वैश्विक धर्म एवं श्रद्धा यात्रा में आज तक हिंदू- मुस्लिम रचनाकारों का संयुक्त भक्ति संगम सदैव से आधारभूत रहा है। रामकाव्य की भक्ति परंपरा के साहित्य में भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुस्लिम रचनाकारों का सहयोग रहा है। सनातन एवं इस्लाम धर्म समुदाय के रचनाकारों की हिंदू और मुस्लिम की भाई-भाई आधारित मनोभाषिकता ने ही' गंगा जमुनी तहजीब' को परंपरागत रूप से आज तक चलायमान रखा है। इस परंपरा को निभाने वाले सच्चे सह्रदय रचनाकार ही हैं, जिनके अपने ह्रदय में भक्ति, आस्था एवं सहयोग की मिश्रित समन्वय भावना है। राम भक्ति काव्य परंपरा एवं 'गंगा जमुनी तहजीब' में इस्लाम धर्म के रचनाकार भाईयों का सहयोग बहुत बड़ा है, जो अपने धर्म के साथ-साथ सदियों से इस 'गंगा जमुनी तहजीब' को सींचते आए हैं। इनके अतुल्य रचना-समाहारों से ही आज सनातन धर्म सभ्यता के प्रभु श्रीराम एक भारत देश के न होकर संपूर्ण जगत-संसार के आदर्शवादी एवं मर्यादा रूपी भगवान श्रीराम हैं।

संदर्भ -

1. डॉ. बद्रीनारायण तिवारी- 'रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार', प्रकाशक मानस संगम, कानपुर, प्रकाशन वर्ष-1979, पृ.सं.158-159
2. राम पटवा 'हे राम के वजूद पे', हिन्दोस्तां को नाज। (अल्लामा इक़बाल की कविता से लिया गया) पुस्तक-बाँग-ए-दरा, प्रकाशन वर्ष-1924
3. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्ययाय' (प्रकरण 16- सरमो. इकबाल), प्रकाशक उदयांचल, आर्य कुमार रोड, पटना-4, प्रथम संस्करण- प्रकाशन वर्ष-1946, पृ.स. 345
4. वही, पृ.स. 358
5. वही, पृ.स. 454
6. पं. राम प्रकाश त्रिपाठी-'भारतीय संस्कृति में मुस्लमानों का अवदान'। लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1977, पृ.स. 465
7. https://www.swargvibha.com/post-single/Dr-Vishala-Sharma/Muslim-Kavitavo-Par-Ramkavya-Ka-Prabhav/CONTNT-2278/843#
8. https://caravanmagazine.in/religion/many-muslim-versions-ramayana-hindi
9. इंटरनेट साभार

◆पीएच.डी. शोधार्थी, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर-795140 (इंफाल)
ईमेल- up80dk@gmail.com
मो. 9219793659, 7454893659

◆◆सह-शोधनिर्देशक एवं क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हैदराबाद केंद्र

◆◆◆शोध निर्देशिका एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर-795140, इंफाल

हिन्दी के वैश्विक प्रसार में वैश्वीकरण, बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद की भूमिका

◆ आकाश शंकर

शोध सार- वैश्वीकरण एक अंतरराष्ट्रीय संप्रत्यय है। यह अनेक आधुनिक अवधारणाओं का समुच्चय है। वैश्वीकरण ने बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद की संस्कृति प्रसूत करके, 'विश्वग्राम' की नई अवधारणा प्रस्तुत की। बीसवीं सदी के अंतिम दशक में भारतवर्ष में द्रुतगति से वैश्वीकरण का प्रचार-प्रसार हुआ। फलत: भारत बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद की गिरफ्त में आ गया। चूँकि

बाज़ारवाद और उपभोक्तावाद के प्रचार-प्रसार के लिए स्थानीय भाषा आवश्यक है इसलिए विश्व बाज़ार ने हिंदी को अपनाया। भारतवर्ष में बहुत जनता हिंदी का व्यवहार करती है। वैश्वीकरण ने हिंदी को विश्व बाज़ार में प्रतिष्ठित किया। वैश्वीकरण, बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद ने हिंदी का व्यावसायिक संस्करण तैयार किया है। इक्कीसवीं सदी में हिंदी विश्व बाज़ार में भारत का प्रतिनिधित्व कर रही है।

बीज शब्द- वैश्विक, विश्व बाज़ार, प्रतिष्ठित, अंतरराष्ट्रीय, बहुराष्ट्रीय, मीडिया, दशक, अवधारणा।

आलेख- 'वैश्वीकरण' अंग्रेज़ी के 'ग्लोबलाइज़ेशन' शब्द के पर्याय के रूप में हिंदी में व्यवहृत होता है। यह भारतीय संस्कृति की "वसुधैव कुटुम्बकम्" की धारणा का आधुनिक विस्तार है, जिसने संपूर्ण विश्व को एकीकृत समुदाय के रूप में परिवर्तित कर दिया है। वैश्वीकरण बीसवीं सदी के अंतिम दशक की अत्यंत महत्वपूर्ण वैश्विक घटना है। मीडिया के माध्यम से वैश्वीकरण की अवधारणा विमर्श के केंद्र में आई। इसकी उत्पत्ति पर भौतिकवादी एवं आदर्शवादी दृष्टि से विचार किया गया है। भौतिकवादियों का मत है कि वैश्वीकरण पूँजीवादी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रसार है, जबकि आदर्शवादी दृष्टि वैश्वीकरण को ज्ञान,विज्ञान, सूचना, विचार इत्यादि के क्षेत्र में सहज परिवर्तन के रूप में देखती है, जिसने स्थानीयता से राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता से अंतरराष्ट्रीयता की ओर अपना रुख किया। यह एक जटिल एवं बहुआयामी प्रक्रियाओं का समायोजन है। इसने प्राय: समाज, संस्कृति, साहित्य, राजनीति, अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी आदि सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। वैश्वीकरण ने अनेक राष्ट्रों को उदारवाद, मुक्त बाज़ार, सूचना प्रौद्योगिकी, पश्चिमीकरण की नीतियों के माध्यम से एक-दूसरे के निकट ला दिया है। इसने स्थानीयता तथा राष्ट्रीयता की परिधि का अतिक्रमण करते हुए, अंतरद्वीपीय एवं अंतरक्षेत्रीय व्यवहारों को प्राथमिकता देकर, विश्व को एकीकृत समूह में बदल दिया है- "वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज को बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिय आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।"[1] एंड्र्यु हेवुड, डेविड हेल्ड, मैनफ्रेड स्टीगर आदि पश्चिमी विचारकों ने वैश्वीकरण को आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सैन्य, पारिस्थितिक एवं डिजिटल वैश्वीकरण की श्रेणियों में विभाजित किया है। भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण, स्थानीयता, राष्ट्रीयता एवं वैश्विकता में अंतर्संबंध, सेवाओं में तीव्रता, दीर्घकालिकता, पारस्परिक विनियम, बहुस्तरीयता आदि इसकी प्रमुख विशेषताएँ है।

वैश्वीकरण की अवधारणा ने 'बाज़ारवाद' एवं 'उपभोक्तावाद' की सैद्धांतिकी निर्मित की। 'बाज़ारवाद', वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक प्रारूप है। यह एक सुनियोजित प्रणाली है, जो सुदूर एवं अधिकाधिक बाज़ार आधारित संगठनों को व्यापारिक वातावरण उपलब्ध करवाती है। बाज़ारवाद ने विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप किया है। प्रौद्योगिकी तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई क्रांति ने इसके स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। अब तो बाज़ार हमारे मोबाइल में ही है, उसके लिए घर से निकलने की भी आवश्यकता नहीं है। बाज़ारवाद का गिरोह डिस्काउंट ऑफर, सेल आदि के माध्यम से ऐसा मकड़जाल बुनता है कि ग्राहक न चाहते हुए भी बाज़ारवादी व्यापारियों के अनुरूप खरीदारी करने लगता है। मृदुला गर्ग ने ठीक ही लिखा है- "बाज़ारवाद माने वह बाज़ार, जहाँ वह नहीं बिकता जो ग्राहक चाहता है, बल्कि ग्राहक वह खरीदता है, जो डिस्काउंट पर बिकता है, भले वह उसके काम का हो या न हो।"[2] यह पूरे वैश्विक बाज़ार की स्थिति है।

विभिन्न ऑनलाइन एवं ऑफलाइन प्लेटफॉर्मों के व्यापारिक स्वरूप ने बाज़ारवादी अंतरराष्ट्रीय संबंधों को सुदृढ़ किया है। बाज़ारवाद का दूसरा पक्ष है- उपभोक्तावाद। बाज़ार व्यक्ति को उपभोक्ता बनाता है। वह उसके भीतर आवश्यकताओं को उत्पन्न करता है। धीरे-धीरे व्यक्ति की भोग प्रधान वृत्ति उसे उपभोक्ता बना देती है। राकेश कुमार के शब्दों में- "उपभोक्तावाद का अर्थ है मनुष्य को भोगवादी बनाना। उसकी इच्छाओं को बढ़ाना। विज्ञापनों के ज़रिए यह काम किया जा रहा है।"[3] उपभोक्तावाद ने व्यक्ति को अपना गुलाम बना लिया है। प्रातः जागरण से लेकर रात्रि शयन तक मनुष्य मात्र उपभोक्ता बनकर रह गया है। उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए समाचार पत्र-पत्रिकाओं में, मीडिया चैनलों में कूपन, वाउचर, सेल, डिस्काउंट ऑफर आदि का विज्ञापन दिया जाता है। सत्य तो यह है कि समाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं मीडिया चैनल भी बाज़ारवादी-उपभोक्तावादी शक्तियों के साथ मिलकर अपना आर्थिक हित साध रहे हैं।

बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद के प्रचार-प्रसार में विज्ञापन की महती भूमिका है। विज्ञापन के मूल में भाषा की संरचना होती है। समाचार पत्र-पत्रिका, मीडिया चैनल, सोशल प्लेटफॉर्म पर ग्राहकों को लुभाने के लिए भाषा का मायाजाल निर्मित किया जाता है। भारतीय परिवेश में बाज़ार की भाषा हिंदी है। इसने पर्यटन, विज्ञान, वाणिज्य, व्यापार, मीडिया, प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी, विश्व बाज़ार, मुक्त बाज़ार, सोशल मीडिया आदि क्षेत्रों में व्यापक लोकप्रियता अर्जित की है। मीडिया और विज्ञापनों ने हिंदी को बाज़ारीकरण की ओर धकेला है- "बाज़ार के बदौलत हिन्दी खूब फैल रही है। बाज़ार की वजह से ही पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी बढ़ रही है और टेलीविज़न चैनलों का विस्फोट भी हुआ है। साफ है कि हिन्दी का बाज़ार बहुत बड़ा है और बाज़ार का काम हिन्दी के बगैर चल ही नहीं सकता, इसलिए उसे तो हिन्दी की सवारी करनी ही है।"[4] अंतरराष्ट्रीय कंपनियों को ज्ञात है कि हिंदी से जुड़े बिना लाभ नहीं हो सकता। उनके लिए हिंदी उत्पाद-उत्पादन और क्रय-विक्रय की भाषा है। विश्व बाज़ार को भारतीय बाज़ार से तथा भारतीय बाजार को उपभोक्ता से जोड़ने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इन नीतियों ने हिंदी के विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। विगत पचास वर्षों में इसकी शब्दावलियों में साधारण वृद्धि हुई है। जनता तक व्यापार को फैलाने के लिए नए-नए शब्द निर्मित किए गए, ताकि संप्रेषण का संकट न हो।

वर्तमान समय में हिंदी विश्व बाज़ार को संबोधित कर रही है। आज बाज़ार और खरीदार दोनों का स्वरूप बदल रहा है। भाषा बदल रही है। मानवीय संबंध लोभ-लाभ तक सीमित हो गए है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र बाज़ार से प्रभावित है- "बाज़ार ने समाज के प्रत्येक पहलू को इतना प्रभावित किया है कि पूरा समाज उसके लिए 'बाज़ार' बन गया है और समाज के लोग 'उपभोक्ता'। इसमें यदि कुछ प्रमुख रह गया है, तो वह है पूँजी। जिसके बल पर बाज़ार शक्तिशाली है। संस्कृति, रिश्ते-नाते का यदि कोई महत्व बाज़ार के समक्ष है, तो वह मुनाफे के लिए है और यह मुनाफा वस्तुओं के उपभोग द्वारा होता है।"[5] संयुक्त परिवार का एकल परिवार में विघटन हो चुका है। महानगरीय तनाव और कुंठाग्रस्त जीवन में व्यक्ति समय व्यतीत करने के लिए बाज़ार जाता है। वह एक उपभोक्ता के रूप में बाज़ार से संवाद करता है। ऐसी स्थिति में हिंदी बाज़ार और उपभोक्ता के मध्य संपर्क भाषा का कार्य करती है।

वैश्वीकरण के पश्चात, भारत की उदार एवं मुक्त आर्थिक नीतियों ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत में निवेश करने के लिए आकृष्ट किया। इन कंपनियों को उत्पाद बेचने के लिए उपभोक्ताओं की आवश्यकता थी और भारतीय मध्यवर्ग बहुराष्ट्रीय कंपनियों का सबसे बड़ा उपभोक्ता बनकर उभरा। गाँव-गाँव, घर-घर तक उत्पादन को पहुँचाने के लिए स्थानीय भाषा

आवश्यक है ताकि सफल संप्रेषण हो सके। इस प्रकार हिंदी ने एक बार फिर अंतरराष्ट्रीय बाज़ार को अपनी ओर आकर्षित किया- "आज भारत बहुत बड़े बाज़ार के रूप में उभरकर आया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भूमंडलीकरण के युग में हिंदी की अनिवार्यता को महसूस कर रही हैं, क्योंकि यहाँ के सत्तर करोड़ से भी अधिक उपभोक्ता हिंदी समझते हैं।"[6] उचित व्यापार के लिए क्रेता और विक्रेता की भाषा एक होनी चाहिए क्योंकि उत्पाद बेचना एक कला है। प्रतिस्पर्धा के इस दौर में भारतीय बाज़ार में उसी का आधिपत्य होगा, जो हिंदी भाषा का प्रयोग करेगा। आज व्यापारिक प्रतिष्ठान नई-नई पद्धतियों के माध्यम से ग्राहकों तक अपना उत्पाद पहुँचा रहे हैं। उत्पाद के साथ उसके प्रयोग करने का तरीका, उससे संबंधित नियम और शर्तों की सूची हिंदी में ज़ारी हो रही है, ताकि ग्राहक अधिक तर्क-वितर्क से बचे। भारतीय बाज़ार उत्पाद की गुणवत्ता का विश्लेषण हिंदी भाषा के बिना नहीं कर सकता।

वैश्वीकरण, विश्वबाज़ार तथा सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए नित्य नवीन परिवर्तनों ने हिंदी के विकास को नई दिशा दी है। हिंदी भारतीय भूगोल से निकलकर विश्व समाज में अपनी भूमिका ग्रहण कर रही है। मीडिया और इंटरनेट जगत की प्रगति ने हिंदी के संप्रेषण को नया मंच और नई संभावनाएँ प्रदान की हैं। इसने तकनीक एवं संचार माध्यमों के प्रत्येक परिवर्तनों के साथ सामंजस्य स्थापित किया है। महिपाल सिंह और देवेन्द्र मिश्र ने स्पष्ट किया है कि हिंदी की तकनीकी प्रगति मूलतः भूमंडलीकरण के बाद विकसित भारत की तकनीकी प्रगति का परिणाम है। यह प्रगति उदारवाद, आर्थिक उदारवाद, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद, सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वित स्वरूप है- "पिछले कुछ दशकों से उदारीकरण नीति के फलस्वरूप विश्व के अनेक देश व्यापार करने के लिए भारत में आने लगे और पैर जमाने लगे। जो देश भारत में कल-कारखाने नहीं लगा पाए हैं, वे देश अपने माल को बिक्री के लिए भेजने लगे हैं जिससे बाज़ारवाद पनप रहा है। आर्थिक उदारवाद के करण हम प्रायः ग्लोबल विलेज (वैश्विक ग्राम) की संज्ञा भी देने लगे हैं। यही 'भूमंडलीकरण' के नाम से जाना जाता है, जिसका और अधिक विस्तार 'सूचना प्रौद्योगिकी' (आई. टी.) के आगमन से हो गया है।"[7] आज विश्व बाज़ार भारत का मुरीद है। अंतरराष्ट्रीय कंपनी की वस्तुएँ भारत के ग्रामीण हाट-बाज़ारों तक पहुँच गई है। गली-गली तक ऑनलाइन डिलीवरी की सुविधा हो गई है। यह विश्व बाज़ार में भारत के सार्थक हस्तक्षेप का प्रमाण है, जिसके मूल में हिंदी भाषा का प्रयोग है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आज विश्व बाज़ार ने सभी देशों को, राज्यों को अपने अनुसार अनुकूलित कर लिया है, किंतु हिंदी ने विश्व बाज़ार को अपने अनुकूल बनाया है। इसने विश्व को भारतीय उपभोक्ता दिए हैं। भारत के अनुरूप सहजषणीय व्यापारिक भाषा दी है। भारतीय विक्रेताओं को विश्व बाज़ार और वैश्विक व्यवसायियों को भारतीय बाज़ार से परिचित करवाया है। इसके वैश्विक स्वरूप ने रोजगार की अनेक संभावनाओं को जन्म दिया है। हिंदी की गतिशीलता और उसका लचीलापन उसे बाज़ार के योग्य बनाता है। इसके लचीले व्याकरण और शब्द भंडार की शक्ति को बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अच्छी तरह से समझा है। हिंदी समय के साथ हो रहे परिवर्तनों के अनुरूप बदल रही है। अपनी सार्वभौमिकता एवं व्यापकता के कारण इसने एक ओर अंतरराष्ट्रीय बाज़ार के साथ संवाद स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है, तो वहीं दूसरी ओर सुदूर भारत के क्षेत्रीय एवं ग्रामीण अंचलों को विश्व से जोड़ा है। यह बहुराष्ट्रीय भाषा और स्थानीय भाषा के मध्य संपर्क भाषा का कार्य करती है। हिंदी की यह संपर्कधर्मिता भारतीय ग्रामीण जनता को विदेशी वस्तुओं एवं वैश्विक संस्थानों के प्रति विश्वस्त करती है। इस प्रकार भारतीय क्रेता और विक्रेता विदेशी दुनिया से जुड़ते हैं। वर्तमान समय में 'हिंदी' हिंदी

भाषा भाषी क्षेत्रों का अतिक्रमण कर अहिंदी भाषा भाषी राज्यों की परिधि में प्रवेश कर अखिल भारतीय प्रसिद्धि अर्जित कर रही है। अपने इसी अखिल भारतीय स्वरूप के कारण हिंदी पूरे विश्व में भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व कर रही है। अब हिंदी 'लोकल' से 'ग्लोबल' हो गई है। विश्व बाज़ार और वैश्वीकरण की शक्तियों ने इसे नई भूमिका और नई ज़िम्मेदारियाँ दी है। आज हिंदी लिपि, लहजा, शब्दावली एवं भाषिक मिश्रण के परिवर्तनों के साथ, अपने पारंपरिक रूप से रूपांतरित हो रही है। इसमें निहित व्यापारिक शक्तियों का अनुमान लगाकर, विश्वस्तरीय व्यापारिक संगठनों ने अपनी भाषा नीति में परिवर्तन किया है। विश्व बाज़ार से भारत तक पहुँचाने के लिए हिंदी आवश्यक हो गई है। यह नए बाज़ार की नई संस्कृति एवं नई तकनीकी नीति की संवाहिका बन गई है। इसने विश्व बाज़ार की भाषा को बदल कर, विश्व को भारत की ओर आकृष्ट किया है। हिंदी केवल उत्पाद, उत्पादन, उपभोक्ता, बाज़ार-व्यापार की भाषा के रूप में भारत का अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधित्व नहीं करती है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय पटल पर इसने भारतीय कला, साहित्य, सिनेमा, संस्कृति इत्यादि की श्रेष्ठता सिद्ध की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1). शैला एल. क्रोचर, *वैश्वीकरण और संबंध: एक बदलती हुई दुनिया की पहचान की राजनीति,* रॉमैन एंड लिटिलफिल्ड प्रकाशन, यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका, संस्करण:2008, पृ.सं.-10

2). मृदुला गर्ग, *खेद नहीं है(कटाक्ष),* किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण:2010, पृ.सं.-75

3). राकेश कुमार, *उत्तर उपनिवेशवाद चुनौतियाँ और विकल्प,* शुभदा प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण:2014, पृ.सं.-109

4). आरिफ महात, रशीद तहसीलदार,*मीडिया:हिंदी और पत्रकारिता,* पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, संस्करण:2014, पृ.सं.-22

5). शालू सूरि, *इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बदलते परिदृश्य,* उत्सव प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण:2016, पृ.सं.-36-37

6). बालशौरी रेड्डी (सं.), *समसामयिक हिंदी साहित्य-विविध आयाम,* शांति प्रकाशन, मेरठ, संस्करण:2012, पृ.सं.-150

7). महिपाल सिंह, देवेंद्र मिश्र, *विश्वबाजार में हिंदी,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण:2007, पृ.सं.-186

◆शोधार्थी
हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
संपर्क सूत्र- 9534648742
ई-मेल-mrakashshankar@gmail.com

उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक निर्णय क्षमता में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग: संभावनाएँ और सीमाएँ

◆कृष्णा नेगी ◆◆प्रो.अनिल कुमार नौटियाल ◆◆◆ वंदना शर्मा

शोध सार - यह अध्ययन उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक निर्णय क्षमता में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग, उसकी संभावनाओं तथा सीमाओं का विश्लेषण करता है। उच्च शिक्षा संस्थानों में ए आई आधारित प्रणालियों- जैसे लर्निंग एनालिटिक्स और अनुकूली शिक्षण प्लेटफ़ॉर्म का तीव्र विस्तार हुआ है, किंतु यह अभी स्पष्ट नहीं है कि ये तकनीकें विद्यार्थियों

की शैक्षणिक निर्णय प्रक्रिया को किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि ए आई विद्यार्थियों को शैक्षणिक निर्णय लेने में कैसे सहायता करता है, वे इसे किस रूप में अनुभव करते हैं तथा इसके उपयोग में उन्हें किन चुनौतियों और सीमाओं का सामना करना पड़ता है।प्रस्तुत शोध में ब्रॉन एवं क्लार्क के ढाँचे के अनुसार विषयवस्तु-विश्लेषण किया गया। निष्कर्षों से पता चलता है कि ए आई विद्यार्थियों को प्रासंगिक और समयबद्ध जानकारी उपलब्ध कराकर, व्यक्तिगत मार्गदर्शन प्रदान करके तथा आत्म-चिंतन और शैक्षणिक योजना को प्रोत्साहित करके उनकी निर्णय-क्षमता को सुदृढ़ करता है। साथ ही, अत्यधिक निर्भरता, डेटा गोपनीयता की चिंता, संदर्भगत संवेदनशीलता की कमी और मानवीय मार्गदर्शन में संभावित कमी जैसी सीमाएँ भी सामने आईं। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ए आई शैक्षणिक निर्णय क्षमता को सशक्त बना सकता है, बशर्ते उसका उपयोग नैतिक, संतुलित और मानवीय परामर्श के साथ किया जाए।

मुख्य शब्द : कृत्रिम बुद्धिमत्ता,निर्णय क्षमता,उच्च शिक्षा,शैक्षणिक नवाचार,नैतिक चुनौतियाँ।

प्रस्तावना-

इक्कीसवीं सदी के इस डिजिटल युग में कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षा जगत के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज की है। उच्च शिक्षा संस्थानों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग न केवल शिक्षण-प्रशिक्षण प्रक्रियाओं को सशक्त बना रहा है, बल्कि यह विद्यार्थियों की*शैक्षणिक निर्णय क्षमता*—अर्थात् विषय चयन, करियर मार्गदर्शन, अध्ययन रणनीति और प्रदर्शन मूल्यांकन से जुड़ी निर्णय प्रक्रिया को भी प्रभावित कर रहा है।(Holmes et al., 2021)[1] कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियाँ अब विद्यार्थियों को उनके व्यक्तिगत डेटा के आधार पर वैयक्तिक मार्गदर्शन प्रदान करने लगी हैं। अतः यह अध्ययन इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति की संभावनाओं और सीमाओं का सम्यक मूल्यांकन करता है, जिससे उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उत्तरदायी और नैतिक उपयोग का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास 1960 के दशक से प्रारंभ हुआ था, परंतु 21वीं सदी में डेटा-संचालित शिक्षण (data-driven learning) के प्रसार ने इसकी भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण बना दिया(Zawacki-Richter et al., 2019[2])। संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO, 2022[3]) के अनुसार, AI शिक्षा के चार प्रमुख क्षेत्रों में प्रभाव डाल रही है:
(1) शिक्षण पद्धतियों का अनुकूलन,
(2) शिक्षार्थियों की प्रगति का विश्लेषण,
(3) व्यक्तिगत शिक्षण (personalized learning), तथा
(4) शिक्षा प्रबंधन एवं प्रशासनिक निर्णय।

भारत में*राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020)* ने भारत के उच्च शिक्षा संस्थान, विशेषकर केंद्रीय विश्वविद्यालय, तकनीकी संस्थान (IITs, NITs) तथा निजी विश्वविद्यालय, धीरे-धीरे AI आधारित लर्निंग एनालिटिक्स, चैटबॉट्स, और करियर मार्गदर्शन टूल्स का प्रयोग कर रहे हैं। हालाँकि, ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में ऐसी तकनीकों तक पहुँच सीमित है। यह*डिजिटल विभाजन (digital divide)* विद्यार्थियों की निर्णय-क्षमता विकास में असमानता उत्पन्न कर रहा है(Luckin et al., 2019)[4]।

इसके अलावा, भारतीय समाज में पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारक भी विद्यार्थियों के निर्णय-निर्माण को प्रभावित करते हैं। अतः भारतीय संदर्भ में यह अध्ययन यह जाँच करेगा कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता किस प्रकार इन सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों के साथ अंतःक्रिया करता है। भारत के उच्च शिक्षा संस्थान, विशेषकर केंद्रीय विश्वविद्यालय,

तकनीकी संस्थान (IITs, NITs) तथा निजी विश्वविद्यालय, धीरे-धीरे कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित लर्निंग एनालिटिक्स, चैटबॉट्स, और करियर मार्गदर्शन टूल्स का प्रयोग कर रहे हैं। हालाँकि, ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों में ऐसी तकनीकों तक पहुँच सीमित है। यह *डिजिटल विभाजन (digital divide)* विद्यार्थियों के निर्णय-क्षमता-विकास में असमानता उत्पन्न कर रहा है। इसके अलावा, भारतीय समाज में पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारक भी विद्यार्थियों के निर्णय-निर्माण को प्रभावित करते हैं। अतः भारतीय संदर्भ में यह अध्ययन यह जाँच करेगा कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता किस प्रकार इन सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों के साथ अंतःक्रिया करता है, एक प्रमुख नवाचार क्षेत्र के रूप में मान्यता दी है और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित शिक्षण निर्णय-सहायक प्रणाली के विकास को प्रोत्साहन देने की बात कही है। इसके अतिरिक्त, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने भी कृत्रिम बुद्धिमत्ता साक्षरता (AI Literacy) को उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करने की सिफारिश की है।

शोध उद्देश्य –1- उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षणिक निर्णय क्षमता के प्रमुख घटकों की पहचान करना।

2-उच्च शिक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों की AI के प्रयोग की संभावनाएँ और सीमाएँ निर्धारित करना।

शोध प्राविधि- प्रस्तुत अध्ययन अन्वेषणात्मक (Exploratory), और वर्णनात्मक (Descriptive) स्वरूप का होगा।इसमें थीमैटिक एनालिसिस का उपयोग कर विभिन्न *थीम्स* (themes) और *पैटर्न्स* (patterns) की पहचान की जाएगी, जो विद्यार्थियों के दृष्टिकोण, अनुभवों को प्रतिबिंबित करेंगे(Braun & Clarke, 2006)[5]।प्रस्तुत शोध में द्वितीयक स्रोतों के रूप में लेख, रिपोर्टें, और पूर्ववर्ती अध्ययन (2020–2025 के बीच) सरकारी और शैक्षणिक नीतियाँ जो AI और उच्च शिक्षा से संबंधित हैं, को लिया गया है।

तालिका-1 प्रारंभिक कोड्स का विवरण (Generating Initial Codes)

क्रम	प्रारंभिक कोड	संक्षिप्त व्याख्या	संभावित उप-कोड्स
1	AI से पाठ्यक्रम चयन में सहायता	विद्यार्थी AI आधारित प्लेटफॉर्म्स का उपयोग अपनी रुचि, योग्यता और भविष्य की संभावनाओं के अनुसार उपयुक्त पाठ्यक्रम चुनने में करते हैं।	रुचि-आधारित सुझाव, भविष्य उन्मुख पाठ्यक्रम, तुलनात्मक विश्लेषण
2	शैक्षणिक योजना में स्पष्टता	AI विद्यार्थियों को अध्ययन योजना, लक्ष्य निर्धारण और शैक्षणिक मार्ग को समझने में सहायता प्रदान करता है।	लक्ष्य निर्धारण, अध्ययन समय प्रबंधन, शैक्षणिक रोडमैप
3	गोपनीयता और डेटा सुरक्षा की चिंता	विद्यार्थियों द्वारा AI टूल्स में व्यक्तिगत और शैक्षणिक डेटा साझा करने को लेकर आशंकाएँ व्यक्त की गईं।	डेटा दुरुपयोग का भय, सूचना की सुरक्षा, डिजिटल नैतिकता
4	निर्णय लेने में आत्मविश्वास	AI से प्राप्त सूचनाएँ और सुझाव विद्यार्थियों में निर्णय लेने की क्षमता और आत्मविश्वास को बढ़ाते हैं।	निर्णय में पुष्टि, अनिश्चितता में कमी, आत्मनिर्भरता

क्रम	प्रारंभिक कोड	संक्षिप्त व्याख्या	संभावित उप-कोड्स
5	AI पर बढ़ती निर्भरता	कुछ विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया कि वे निर्णय लेने में AI पर अत्यधिक निर्भर हो रहे हैं, जिससे मानवीय विवेक की भूमिका कम होती जा रही है।	स्वतंत्र सोच में कमी, तकनीकी आश्रितता, मानवीय मार्गदर्शन की उपेक्षा

ये प्रारंभिक कोड्स दर्शाते हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता शैक्षणिक निर्णय-निर्माण में एक ओर सहायक और सशक्त उपकरण के रूप में उभर रही है, वहीं दूसरी ओर गोपनीयता, नैतिकता और अत्यधिक निर्भरता जैसी गंभीर चिंताएँ भी सामने आ रही हैं (Creswell & Poth, 2018)[6]।

तालिका-2 Themes–Sub-themes–Codes की संक्षिप्त मैपिंग

Theme	Sub-theme	संबंधित प्रारंभिक कोड
AI द्वारा शैक्षणिक निर्णयों में सशक्तिकरण	पाठ्यक्रम चयन में सहायता	AI से पाठ्यक्रम चयन में सहायता
	शैक्षणिक योजना में स्पष्टता	शैक्षणिक योजना में स्पष्टता
	निर्णय में आत्मविश्वास	निर्णय लेने में आत्मविश्वास
AI के उपयोग से उत्पन्न सीमाएँ	तकनीकी निर्भरता	AI पर बढ़ती निर्भरता
	गोपनीयता और डेटा सुरक्षा	गोपनीयता और डेटा सुरक्षा की चिंता

इन Themes और Sub-themes से यह स्पष्ट होता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता उच्च शिक्षा में शैक्षणिक निर्णय-निर्माण को एक ओर सशक्त बनाती है, वहीं दूसरी ओर नई नैतिक और व्यावहारिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न करती है।

चर्चा एवं निष्कर्ष- चर्चा एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के विषयगत विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों की शैक्षणिक निर्णय प्रक्रिया को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर रही है। अध्ययन में दो प्रमुख थीम्स—शैक्षणिक निर्णयों में सशक्तिकरण तथा AI के उपयोग से उत्पन्न सीमाएँ एवं चिंताएँविशेष रूप से परिलक्षित हुईं। **प्रथम थीम** के अंतर्गत यह पाया गया कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम चयन, समय प्रबंधन, शैक्षणिक योजना तथा करियर संबंधी निर्णयों में मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा उपलब्ध कराई गई व्यक्तिगत तथा डेटा-आधारित सूचनाएँ विद्यार्थियों को अधिक स्पष्ट, सटीक एवं तर्कसंगत निर्णय लेने में सक्षम बनाती हैं। इसके परिणामस्वरूप उनकी आत्मक्षमता (self-efficacy) में वृद्धि होती है तथा वे अपने शैक्षणिक लक्ष्यों के प्रति अधिक आत्मविश्वासी बनते हैं(Luckin et al., 2016)[7]।

अध्ययन के दूसरे पक्ष में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सीमाएँ एवं चिंताएँ भी उजागर हुईं। विद्यार्थियों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर बढ़ती निर्भरता यह संकेत देती है कि यदि इसका संतुलित उपयोग न किया जाए तो यह उनकी स्वतंत्र सोच एवं आलोचनात्मक निर्णय क्षमता को प्रभावित कर सकता है(Selwyn, 2019)[8]। इसके अतिरिक्त, गोपनीयता (privacy) एवं डेटा सुरक्षा (data

security) को लेकर व्यक्त आशंकाएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणालियों के नैतिक एवं नियामक पहलुओं में अभी भी सुधार की आवश्यकता है। यह स्थिति इस तथ्य को रेखांकित करती है कि तकनीकी प्रगति के साथ-साथ नैतिक उत्तरदायित्व एवं सुरक्षा मानकों का सुदृढ़ होना भी अनिवार्य है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों की शैक्षणिक निर्णय क्षमता को सशक्त बनाने की व्यापक संभावनाएँ रखती है, किन्तु इसके साथ जुड़ी सीमाओं एवं नैतिक चुनौतियों को अनदेखी नहीं की जा सकती। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रभावी उपयोग तभी संभव है जब इसे मानवीय विवेक, शिक्षक मार्गदर्शन तथा सुदृढ़ डेटा-संरक्षण नीतियों के साथ संतुलित रूप में अपनाया जाए (Williamson & Eynon, 2020)[9]। इस प्रकार, कृत्रिम बुद्धिमत्ता को निर्णय-निर्माण का विकल्प न मानकर एक सहायक उपकरण के रूप में स्थापित करना ही अधिक उपयुक्त एवं दीर्घकालिक रूप से लाभकारी सिद्ध होगा (Lee,et.al., 2022)[10]।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Holmes,W,Willaik.et.al.(2021).शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता: शिक्षण और अधिगम के लिए संभावनाएँ और निहितार्थ। Center for Curriculum Redesign.

2. Zawacki-Richter,et.al.,(2019).उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के अनुप्रयोगों पर अनुसंधान की व्यवस्थित समीक्षा।*International Journal of Educational Technology in Higher Education, 16(1), 1–27.*

3. UNESCO.(2022).कृत्रिम बुद्धिमत्ता और शिक्षा: नीति-निर्माताओं के लिए मार्गदर्शन।पेरिस: UNESCO.

4. Luckin,R.,et.al.,(2019).शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता: एक अनुसंधान एजेंडा की ओर। UNESCO.

5. Braun,V.Clark.et.al.,(2006).मनोविज्ञान में थीमैटिक विश्लेषण का उपयोग।*Qualitative Research in Psychology, 3(2), 77–101.* https://doi.org/10.1191/1478088706qp063oa

6. Creswell,J.et.al., (2018) :गुणात्मक अन्वेषण और शोध रूपरेखा: पाँच दृष्टिकोणों में से चयन (चौथा संस्करण)। Sage Publications.

7. Luckin,R.,Holmes,et.al., (2016).: शिक्षा में एआई के पक्ष में एक तर्क।पीयर्सन एजुकेशन

8. Selwyn,N.(2019).क्या रोबोट शिक्षकों की जगह ले सकते हैं? एआई और शिक्षा का भविष्य। Polity Press.

9. Williamson,B.,&Eynon,R.(2020).शिक्षा में एआई के ऐतिहासिक सूत्र, छूटे हुए संबंध, और भविष्य की दिशाएँ।*Learning, Media and Technology, 45(3), 223–235.* https://doi.org/10.1080/17439884.2020.1798995

10. .Lee,et.al.,(2022).एआई-सहायित अधिगम विश्लेषण और शैक्षणिक आत्म-नियमन।*Educational Technology Research and Development, 70(4), 1561–1582.*

◆शोध छात्र, शिक्षा विभाग,
हे.न.ब.ग.विवि.श्रीनगर गढ़वाल
ई. मेल : negikrish94@gmail.com
मो: 7900365828
◆◆प्रोफेसर, शिक्षा विभाग,
हे.न.ब.ग.विवि.श्रीनगर गढ़वाल
◆◆◆शोध छात्रा, शिक्षा विभाग
हे.न.ब.ग.विवि.श्रीनगर गढ़वाल

भारतीय संस्कृति, परंपरा और लोक नाट्य

◆आरती

सार-भारतीय प्रांत और प्रदेश में चाहे योग जैसी बातें हो या विवाह, परिवार जैसी संकल्पनाएँ हो भाषाएँ, धर्म, संगीत, नृत्य, स्थापत्य, खानपान, पहनावा, संस्कृति, परंपराएँ आदि सभी बातों में विविधता पायी जाती है, लेकिन इसके बावजूद भारत जैसी एकता की मिशाल विश्व के अन्य किसी भी देश में पायी नहीं जाती है। 'विविधता में एकता' यही भारत की इस विशाल और वैविध्यपूर्ण देश की आश्चर्यजनक पहचान है और यह संस्कृति समय की माँग के अनुसार विकसित और रुपांतरित होती रही है। रिश्तों में गर्माहट और उत्सव में जोश के कारण यह देश विश्व में हमेशा अलग ही नज़र आया है। देश की 'अतिथि देवोभव' की परंपरा ने बड़ी संख्या में विदेशी सैलानियों को इस जीवंत संस्कृति की ओर आकर्षित किया, जिसमें अनेक धर्मों, त्योहारों, खानपान, कला, साहित्य, संगीत और कई चीजों का मेल रहा है।। नृत्य और संगीत की ही भाँति लोकसाहित्य की एक शाखा लोक नाट्य में भी राष्ट्रीय प्रतिभा की वास्तविक झाँकी मिलती है। लोक-नाट्य देश की परंपरागत संस्कृति में अत्यंत समृद्ध एवं गहराई तक जुड़ा हुआ है। लोक की कलात्मक अभिव्यक्ति के इस स्वरूप में जनता के समस्त कलात्मक एवं सांस्कृतिक जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। इसी उद्देश्य से इस शोध आलेख में संस्कृति और परंपरा की एक शाखा के अंतर्गत लोकनाट्य में सामान्य विधियों और रूढ़ियों के अंतर्गत विकसित निश्चित नाट्य-विचार पर विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द- संस्कृति, परंपरा, नाट्य, लोकनाट्य, बहुरंगनाट्य, मौखिक परंपरा, नौटंकी, स्वाँग, नकल और भड़ैती, रामलीला।

मूल आलेख- भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम काल से ही सुदृढ़ होने के संकेत प्राप्त हुए हैं, साथ ही यह संस्कृति की व्यापकता तथा चरम विस्तार को भी दर्शाता है। प्राचीन मान्यताओं तथा ऐतिहासिक, पौराणिक, आध्यात्मिक मान्यताओं पर नज़र डालें तो पता चलता है कि हमारी संस्कृति में कहीं न कहीं आज भी इसकी पैठ जैसे की तैसे बनी हुई है। हम देखते हैं कि प्राचीन काल से प्रकृति की पूजा, जंगल एवं वृक्ष की पूजा आदि हमारे संस्कृति के अंग बन गए हैं जो आज भी उसी रूप में पूरे देश में व्याप्त है। चाहे वह वट वृक्ष, पीपल, तुलसी का पौधा हो या फिर छठ पूजा जैसे अनुष्ठान में भगवान सूर्य की पूजा की बात हो। हम यह भी देखते हैं कि बैसाखी, मकर संक्रांति, पोंगल, ओणम, सरहुल जैसे तमाम पारंपरिक पूजा पाठ आज भी हमारे समाज तथा संस्कृति की पहचान बने हुए हैं। देव पूजा, वृक्ष पूजा, प्रकृति पूजा, पशु पूजा (नदी, तालाब, झील, आकाश, गाय पूजा अथवा अन्य आदि) पक्षियों के प्रति सचेत, पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता तथा पशुओं के प्रति सोच हमारी संस्कृति की सजीवता और सहजता को दर्शाता है। यह सब हमारी संस्कृति की रीढ़ है, जोकि हज़ारों वर्षों से ये मान्यताएँ परंपराओं के आधार पर आज भी ज़ारी हैं।

"मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर हमारे पूर्वजों ने त्योहार, पर्व, उत्सव, मेले, यात्रा इत्यादि के आयोजन की परंपरा शुरू की थी। मौर्य, चोल, मुगल काल और ब्रिटिश साम्राज्य के समय तक भारत हमेशा से अपनी अतिथि परंपरा के लिए मशहूर रहा है।रिश्तों में गर्माहट और उत्सव में जोश के कारण यह देश विश्व में हमेशा अलग ही नज़र आया है। देश की 'अतिथि देवोभव' की परंपरा ने बड़ी संख्या में विदेशी सैलानियों को इस जीवंत संस्कृति की ओर आकर्षित किया, जिसमें अनेक धर्मों, त्योहारों, खानपान, कला, साहित्य, संगीत और कई चीज़ों का मेल रहा है। देवताओं की इस धरती में संस्कृति, रिवाज़ और परंपरा से लेकर बहुत कुछ खास रहा है। भारतीय संस्कृति व परंपरा बहुआयामी है। भारतीय परंपरा सिंधु घाटी सभ्यता के दौरान बनी व आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई, उसके साथ ही पड़ोसी देशों की रिवाज़ों, परंपराओं और विचारों का समावेश भी इसमें हुआ। भारत कई धार्मिक प्रणालियों

जैसे हिंदू, जैन, मुस्लिम, बुद्ध, सिख का जनक रहा है और इस मिश्रण से भारत में विभिन्न परंपराओं का उदय हुआ। लेकिन आधुनिक काल में औद्योगिक क्रांति के कारण परंपरा से आधुनिकता की ओर विकास तेज़ी से बढ़ा और समकालीन सामाजिक, राजनीतिक व अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण आधुनिकता की ओर विकास अनिवार्य हो गया और परंपरागत रूढ़िवादी व्यवस्था कमज़ोर होती गई।"[1] अर्थात् समय की माँग के अनुसार परंपराएँ बदलती रहती हैं, आप एक नई परंपरा छोड़कर दूसरी परंपरा ग्रहण कर सकते हैं या पुरानी परंपरा के स्थान पर नई परंपरा स्थापित कर सकते हैं।ऐसे समकालीन दौर में आधुनिक भारतीय परंपरा संक्रमण काल से गुज़र रही है। इस संक्रमण काल में प्राचीन परंपरावादियों और आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था और मूल्यों में संघर्ष चल रहा है। भारतीय संस्कृति व परंपरा लगभग 1400 बोलियों तथा औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त 22 भाषाएं, विविध धर्म, कला, वास्तुकला, साहित्य, संगीत, नृत्य की विभिन्न शैलियाँ भारत में विविधता में एकता के अखंडित स्वरूप वाले सबसे बड़े प्रजातंत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं।

लोकनाट्य के संदर्भ में बात की जाए तो लोक-नाट्य प्रत्येक देश की परंपरागत संस्कृति का अत्यंत समृद्ध एवं गहराई तक जोड़ा होता है। नृत्य और संगीत की ही भाँति लोक-साहित्य की इस शाखा में भी राष्ट्रीय प्रतिभा की वास्तविक झाँकी मिलती है। विभिन्न सांस्कृतिक रूपों वाले भारतवर्ष में, लोक की कलात्मक अभिव्यक्ति के इस स्वरूप को भी विस्तृत क्षेत्र मिला है। हमारे देश में अनंत नाट्य-साहित्य पाये गए हैं, जो एक ओर तो विविध जाति एवं चरित्रगत विशेषताओं की दृष्टि से और दूसरी और सौंदर्यगत आकर्षण तथा कलात्मक उपलब्धि की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। चाहे कोई उत्सव अथवा त्योहार हो या जनजीवन की अन्य सामान्य घटनाएँ, कोई न कोई नाट्य-प्रदर्शन हो ही जाता है जिसमें गीत, नृत्य, पुराण-प्रसंग और कथा सभी परस्पर संबद्ध होते हैं। जनता के जीवन तथा उसकी चेतना का अभिन्न अंग यह नाटक प्रकृति की 'प्रतिछवि' के समान है।

भारतीय नाट्य के इतिहास में, मध्ययुगीन 'बहुरंगी नाट्य' के विविधता-परक स्वरूप से अधिक आकर्षक कोई भी अन्य वस्तु नहीं रही है। शास्त्रीय परंपरा के विच्छिन्न होने के पश्चात्, 'भाषा-साहित्य' तथा 'जनपद-संस्कृति' के प्रसार और समृद्धि के साथ ही साथ नाट्य का भी उदय और विकास हुआ। हमारा लोक-नाट्य इसी 'बहुरंगनाट्य' की परंपरा में है, अतः इसको संक्षिप्त में रूप समझे तो ऐसा करने के दो विशेष कारण हैं। एक तो यह कि इसके द्वारा लोक-नाट्य के प्राथमिक स्रोतों और कला-उपकरणों के संबंध में हमें ऐतिहासिक दृष्टि प्राप्त हो सकेगी और दूसरी, लोक-नाट्य की नाटकीय-प्रणालियों और प्रदर्शन-नियमों को हम अधिक वैज्ञानिक ढंग से समझने में समर्थ हो सकेंगे। उदाहरण स्वरूप सिद्ध काव्य 'पद्मावत' में जायसी ने कथा-वर्णन, नृत्य, जादू के खेल, कठपुतली के नाच, स्वर-संगीत, नाटक-तमाशा, नटों के खेल आदि जनसाधारण के नाट्यात्मक मनोविनोदों का वर्णन करके इस 'बहुरंगी नाट्य' स्वरूप के साक्ष्य को प्रस्तुत किया है। 'मिलनद्वीप वर्णन खंड' में उन्होंने लिखा है :

"कतहुँ कथा कहै कहु कोई। कतहेंनाघकोउभलहोई।। कतहुँछरहटा लेखन लावा। कतहुँ पाखंड काठ नचावा।। कतहुँ नाव सबब होई भला। कतहुँ नाटक चेटककला।।" [2]

हमारे आधुनिक संगीत अथवा नौटंकी गायनों का संबंध इन मध्ययुगीन रचनाओं से जोड़ा जा सकता है। हमारे साहित्यिक नाटक के इतिहास में भले लंबे-लंबे व्यवधान रहे हों, पर निरक्षरों की नाट्य परंपरा कभी भी विश्रृंखलित नहीं हुई। वह निरंतर चलती आ रही है। यह सच है कि इन मध्य युगीन रचनाओं का कोई नाटकीय उद्देश्य नहीं है, पर उनसे पता चलता है कि मध्ययुग में कथात्मक साहित्य और नाटकीय साहित्य में बड़ी ही सूक्ष्म तथा हलकी-सी विभाजन-रेखा थी। वास्तव में कथात्मक काव्य को बड़ी ही सरलता के साथ नाटक में परिणत किया जा सकता था। विशेष रूप से ऐसे समय में, जब 15वीं-16वीं शताब्दी के सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने कला के प्रत्येक क्षेत्र को नवोन्मेष से भर दिया था, जब नाटक को एक प्रकार का औपचारिक स्वरूप देने का प्रयास मंदिरों के माध्यम से होने लगा था।"कई शताब्दियों तक नाटक मंदिरों के वातावरण में उत्पन्न तथा विकसित हुए।

और जब यह धार्मिक नाटक मंदिर के क्षेत्र को छोड़कर भव्य शोभा यात्रा नाटकों के रूप में बाहर आया तो उसमें जनता के समस्त कलात्मक एवं सांस्कृतिक जीवन की झाँकी दिखाई देनी लगी।यह लीला-नाटक मुख्यतः प्रथाओं से संबद्ध हैं। उत्सव तथा रीतियों और इनके अभिनय तथा अनुकरण को ऐसा एकाकार बना दिया गया है कि उनमें नाटकीयता को ही प्रकट किया जाता है।इन उत्सवों के अनुकरणात्मक अभिनय और इन लीलाओं के संबंध में क्रमबद्ध मौलिक रचनाओं का पाठ दोनों का ही एक परंपरागत और विशेष प्रकार का ढंग था जिससे जनता उतनी ही सुपरिचित है जितनी महाकाव्यों तथा उनके चरित्रों से।यही हिंदी-क्षेत्र के जलूस नाटकों में राम तथा कृष्ण का जीवन अंकित है। इनमें 'लोक-नाट्य' का सर्वाधिक समृद्ध एवं प्रतिनिधि रूप मिलता है। लोक-जीवन के परिवर्तनशील सामाजिक-सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रभाव में पड़कर इस जलूस-नाटक ने, नाट्य एवं अभिनय की परिस्थितियों के अनुसार विविध प्रकार के अनेक रूपों को विकसितकिया है।"[3]उदाहरणस्वरूपछायानाटक में रामलीला को प्रस्तुत करने के लिएउदयशंकरजी का प्रयोग अत्यंत सफल रहा और एक निश्चित नाट्य-रूप की भाँति प्रतिष्ठित हो गया।

"नाटक जब मंदिर से निकलकर बाहर जनता के बीच आए तो उनमें चौकियों और झाँकियों का उपयोग करना स्वीकार किया गया, महाकाव्यों की प्रमुख घटनाओं का चित्रों में अंकन किया गया और पात्र जितने स्वाभाविक रूप से नाटकीय संवाद बोलते थे, उतने ही सहज ढंग से 'स्वगत भाषण', 'जनांतिक', 'समाम्यान' 'उद्घोषण' करते थे, ऐसा करना 'वृत्त में बँधे हुए' पूर्वयोजित अभिनय से बहुत-कुछ भिन्न रहा। इन प्रदर्शनों के कथात्मक स्वरूप की दृष्टि से, लोक-नाट्यकला में एक के बाद दूसरी मंच सेटिंग की प्रणाली विकसित हुई है। प्रवेश और प्रस्थान, यहाँ तक कि दृश्य-परिवर्तन और रूप-सज्जा आदि सबकुछ, दर्शकों के सामने ही होता है क्योंकि मंच चारों ओर से खुला रहता है। कभी-कभी दर्शकों के बीचों-बीच मंच बनाया जाता है और दर्शकगण कभी भी उसे किसी अन्य स्थान के रूप में नहीं देखते जैसा कि हम लोग जो रंगभूमि तथा दृश्यों आदि को समझते हैं। अंत में यह भी कहना होगा कि किसी भी दृश्य-समायोजन के अभाव में, लोक-नाटक का समग्र व्यक्तित्व ही बदला हुआ है, चाहे उसे अभिनेताओं की दृष्टि से देखें या दर्शकों की।"[4]

"ये नाटक कई नामों से प्रसिद्ध हुए। जैसे नौटंकी, सांगीत, भगत, निहलदे, नवलदे और स्वाँग। ये सभी नाम लगभग समानार्थी हैं,एक ही नाट्यगत-रूप का परिचय देते हैं, लेकिन इसके साथ ही, मिलती-जुलती नाटकीय पद्धतियों और सिद्धांतों की रूपरेखा के अंतर्गत ये नाटक प्रादेशिक विभिन्नता को भी प्रकट करते हैं। स्वाँग कदाचित् सर्वाधिक प्राचीन नाम है, यहाँ तक कि नवीं शताब्दी में मिलता है। प्रसिद्ध प्राकृत नाटक कर्पूरमजसेभट्टक है जो कि नाटक का कदाचित् लोकप्रिय रूप था। उसका स्वरूप और नाटकीय प्रदर्शन आजकल की नौटंकी से मिलता-जुलता है।"[5]

"लोकनाटक का एक और प्रकार है जिसे उसके अपने विकास-क्रम में नृत्य और नाटक के बीच की वस्तु कहा जा सकता है। नाट्य की दृष्टि से वे छोटे-छोटे कथात्मक नृत्य बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं, जिनमें प्रदर्शनकर्ता किन्हीं छोटे पौराणिक प्रसंगों पर भाव प्रदर्शित करते हुए नृत्य करता है और वाद्यवृंद की पृष्ठ-भूमि में भावपूर्ण धुनों में, कार्य-व्यापार की व्याख्या करने वाला मूल पाठ सामूहिक रूप से गाया जाता है। 'किरात' और 'अर्जुन' के युद्ध को दिखलाने वाला बिहारी लोक-नृत्य, अथवा राजस्थान का 'घूमर' नृत्य जिसकी चित्रात्मक रूप-सज्जाएँ और मंथर अंग-गतियाँ चरम-सीमा का धीरे-धीरे निर्माण करती रहती हैं और ऐसा प्रभाव डालती है, मानो कथावस्तु के अभिनय में प्राचीन नाटक की आत्मा उतर आई हो। कभी-कभी तो सिर्फ़ एक अभिनेता, कोई चेहरा लगाकर या विशद और जटिल रूप-सज्जा करके, कथा के अपने अनुकरणात्मक प्रदर्शन आश्चर्यजनक नाट्यात्मक गहराई भर देता है। जैसाकि जब महान कत्थक-नर्तक श्री शंभु महाराज 'ठुमरी' अथवा 'रसिया' प्रस्तुत करते हैं तो अपने नृत्य-प्रसंगों में वे नाटकीय ढंग ले आते हैं और अनेक पात्रों के रूप धारण करके वे उस सशक्त मुद्रा-अभिनय की सृष्टि करते हैं, जो समस्त नाटक का स्रोत है।"[6]

"लोक का यह हल्का-फुल्का, धर्म-निरपेक्ष नाटक बड़ा

ही सीधा-सादा नाट्य है। स्वाँग, तमाशा, नकल और भडैती आदि इसके खास अंग प्रहसनात्मक हैं। उत्सवों और समारोहों से संबद्ध, अपेक्षाकृत अधिक स्थानीय महत्व वाले इसके अगणित छोटे तथा कम विकसित दूसरे रूप भी हैं। नाटक का यह रूप हिंदी-प्रदेश में नाट्य के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।इसमें मध्यकालीन संस्कृति की चित्ताकर्षकता, वाक्पटुता और शूरवीरता का समस्त वातावरण विद्यमान है। साथ ही इस नाटक से यह भी प्रकट होता है कि हमारे नाट्य पर औद्योगिक सभ्यता के प्रारंभिक प्रभाव पड़े हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से, इसकी स्थिति बहुत अच्छी है, क्योंकि यह नाटक जब गत शताब्दी के अंत में विकसित हुआ तब ग्रामीण और नगरीय संस्कृतियाँ अधिक निकट संपर्क में आ रही थीं। लोक-कवियों, नर्तकों और विदूषकों ने यह अच्छा अवसर पाया। उन्होंने परंपरागत कहानियों, स्थानीय नायकों की कीर्तियों, सभी देशों की छल-कपट अथवा प्रेम-संबंधी कथाओं आदि बहुत-सी चीज़ों को नाटक का रूप दे दिया, उनमें नाच-गान और नाट्य-कला की अन्य सामान्य विशेषताएँ जोड़ गईं।"[7] अर्थात् लोकनाटक का अध्ययन करें तो हमें सदा ही इस नाट्य-विचार के मूलभूत एवं महत्वपूर्ण विषय का ध्यान रखना होगा कि इसका स्वरूप जड़ नहीं है। परिवर्तित होते हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ यह भी परिवर्तित और विकसित होता है। आज हम रामलीला के विविध रूप देखते हैं और 'रामलीला' स्वाँग अथवा संगीत जैसे धर्मनिरपेक्ष संगीत-नाटकों से मिल-जुल गई हैं। इन बातों से इस 'नाट्य-विचार' के गतिशील स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है और पता चलता है कि लोक-नाटक में निश्चय ही प्रगतिशील तत्व रहे हैं।

"यह सर्वविदित है कि लोकनाटक की अवनति हो रही है और उसकी वह शैलियाँ अब शुद्ध और प्रामाणिक नहीं हैं। हम उनके पुर्नस्थापन तथा पुनर्गठन के प्रयत्न कर सकते हैं, पर अतीत का नाट्य-वैभव लुप्त हो रहा है, इसलिए पछताने से कोई लाभ न होगा। इसलिए नाटकीय रूपों के सामान्य ढाँचे में जो परिवर्तन होगा, उसे स्वीकार करना पड़ेगा। लोक-नाटकों में जो लचीलापन है, उसके कारण उसमें नए विषयों का भी समावेश आसानी से किया जा सकेगा।"[8]

अंतः मौखिक और लिखित परंपरा के बीच निरंतर संपर्क भारतीय साहित्य की एक विशेषता रही है। कभी-कभी तो साहित्यिक और मौखिक परंपराओं के बीच अंतर स्थापित करना कठिन हो जाता है। ऐसे ही लोक-नाटक के इस समृद्ध और बहुविध क्षेत्र ने साहित्यिक नाटक को, सभी कालों में और प्राविधिक विकास के सभी रूपों में अत्यंत मूल्यवान योग दिया है।लोकनाटक, जो मौखिक परंपरा में है और संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है, निरंतर विकसित हो रहा और उसने साहित्यिक रूपों को महत्वपूर्ण कला-उपादान प्रदान किए हैं।इसलिए लोक नाटक साहित्य और नाट्य कलाओं तथा उनके पुनर्गठन से संबंधित समस्त विज्ञान लेखा-जोखा इकट्ठा किया जाना परमावश्यक है। क्योंकि लोकनाटक का स्वभाव प्रभावहीन और पिछड़ा हुआ होता जा रहा है। किसी सुयोजित आकलन द्वारा हम इन मृतप्राय नाटकीय तत्त्वों को सँवार-सुधारकर सप्राण कर सकते हैं। हमें इस नाट्य-विचार के मूलभूत एवं महत्वपूर्ण विषय का ध्यान रखना होगा कि इसका स्वरूप जड़ नहीं है। परिवर्तित होते हुए सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ यह भी परिवर्तित और विकसित होता है। इस तरह, इसने नई विधियों और रूढ़ियों को बनाया है तथा कथानक को पुनर्गठित और सुनियोजित किया है। अंततः इसके प्रयोगों से साहित्यिक नाटक को अत्यंत महत्वपूर्ण लाभ मिलेगा और साहित्यिक रूपों को महत्वपूर्ण कला-उपादान प्रदान करेगा।

संदर्भ सूची:-

1. श्री रामदास गौड़ा, आलेख भारतीय परम्परा और साहित्य का महत्व, अखण्ड ज्योति पत्रिका, अंक-1, वर्ष 1958, पृ.6

2. जायसी ग्रंथावली, पद्मावत खंड, संपादक-रामचन्द्र शुक्ल, वाणी प्रकाशन, 2015, नई दिल्ली, पृ.28

3. लोकधर्मी नाट्य परम्परा, डा० श्याम परमार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय1999,,वाराणसी, पृ8-7.

4. वहीं,पृ.10

5. परम्पराशील नाट्य, जगदीशचन्द्र माथुर, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा प्रकाशन, 2006, नई दिल्ली, पृ.35

6. वही,पृ.35

7. वही,पृ.35

8. भारतीय नाट्य साहित्य, संपादक- नगेन्द्र, सेठ गोविंद दास हीरक, जयंती समारोह समिति प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ416

◆ शोधार्थी (पी.एच.डी.), दिल्ली विश्वविद्यालय
ई-मेल- aartichaurasia40@gmail.com
मोबाइल नं.- 9643192451

हिंदी कविता और आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस: 'मानव आत्मा' बनाम 'मशीन आत्मा'

◆अर्शदीप कौर

प्रस्तावना

साहित्य का मूल स्वभाव मनुष्य की आत्मा का प्रकट रूप है। कविता को यदि "मानव अनुभव की लयात्मक ध्वनि" कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वह मात्र शब्दों का संयोजन नहीं, बल्कि संवेदना, स्मृति और स्वप्न का सामूहिक उद्गार है। किंतु आज, जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) मनुष्य की रचनात्मकता को चुनौती देने के स्तर तक पहुँच चुकी है, तो प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या कविता में अब भी मनुष्य की अपरिहार्यता बची रहेगी, अथवा मशीन भी उस गहन आत्मिक क्षेत्र में प्रवेश कर जाएगी जहाँ अब तक केवल कवि का एकाधिकार था? विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में AI का उपयोग पहले से ही चिकित्सा, परिवहन, अर्थव्यवस्था और रक्षा में हो रहा था, परंतु अब यह साहित्य जैसे संवेदनशील और मानवीय क्षेत्र में भी सक्रिय हो चुका है।

हिंदी कविता का इतिहास हज़ारों वर्षों में फैला हुआ है—ऋग्वैदिक मंत्रों से लेकर कबीर, तुलसी, सूर और फिर आधुनिक काल के निराला, प्रसाद, नागार्जुन, केदारनाथ सिंह, कुमार विश्वास और आगे तक। इस पूरी परंपरा में कविता हमेशा मानवीय आत्मा की अभिव्यक्ति मानी गयी है। लेकिन आज, जब ChatGPT जैसी AI मशीनें भी कविता लिखने लगी हैं, तो प्रश्न उठता है- क्या यहाँ कोई "मशीन आत्मा" भी अस्तित्व में आ रही है?[4][5][6][7][8]

AI द्वारा रचित कविताएँ पढ़ने पर प्रथम दृष्टि में वे सुगढ़, व्यवस्थित और व्याकरणिक शुद्ध प्रतीत होती हैं। परंतु उनमें कहीं न कहीं एक गहरी रिक्तता है- मानवीय हृदय की धड़कन अनुपस्थित है। इस रिक्तता को हम "मानव आत्मा" और "मशीन आत्मा" के अंतर से समझ सकते हैं। यही इस शोध-पत्र का केंद्रीय प्रश्न है।

1. आत्मा और कविता का दार्शनिक सम्बन्ध:

भारतीय काव्य परंपरा ने कविता को आत्मा से जोड़कर देखा है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में रस ही काव्य की आत्मा कहा गया। आनंदवर्धन ने ध्वनि को काव्य का प्राण माना। मम्मट ने कहा कि काव्य शब्द और अर्थ का वह विशेष संयोग है जो हृदय को आंदोलित कर दे। इन सबमें एक बात सामान्य है- कविता में मानव आत्मा की सहभागिता अनिवार्य है। कविता का उद्गम वहाँ होता है जहाँ मनुष्य अपने अनुभव को शब्दों में ढालने का प्रयास करता है। चाहे वह प्रेम हो, पीड़ा हो, विस्मृति हो या विद्रोह—कविता की जड़ें मानवीय अनुभूति में होती हैं।[1][2][3]

इसीलिए कबीर ने कहा—

"कागज़ कलम नहिं छुए, कलम गही नहिं हाथ;
दसों अंग से लिखि डारि, देखहु मेरी बात।"

इस पंक्ति में स्पष्ट है कि कविता बाहरी औज़ार से नहीं, बल्कि भीतर के अनुभव से जन्म लेती है। मशीन के पास न आत्मा है, न अनुभव। तब क्या वह कविता रच सकती है? यही वह दार्शनिक द्वंद्व है जिसे आज हमें सुलझाना है।

2. कृत्रिम बुद्धिमत्ता का रचनात्मक तर्क:

AI की कार्यप्रणाली पूरी तरह गणितीय है। वह शब्दों और वाक्यों के विशाल डेटा को पढ़कर पैटर्न पहचानता है और उन्हीं पैटर्नों के आधार पर नया वाक्य संयोजित करता है। इस प्रक्रिया में न तो अनुभव का तत्व है, न संवेदना का, बल्कि केवल पुनरावृत्ति और संयोजन है।[9][10][11][14]

मशीन का लेखन एक प्रकार का सांख्यिकीय अनुकरण है। यदि हज़ार कविताओं में "चाँद" और "सुंदरता" का संबंध बार-बार आया है, तो AI अगली कविता में भी वही संबंध स्थापित कर देगा। लेकिन यहाँ प्रश्न है—क्या कविता केवल संबंधों की पुनरावृत्ति है, या उसमें कुछ ऐसा भी है जिसे मशीन पकड़ नहीं सकती?

AI का मूलाधार है- डेटा, एल्गोरिद्म और पैटर्न रिकग्निशन। मशीनें उन शब्दों, वाक्यों और शैलियों को समझकर नए वाक्य रचती हैं जिन्हें पहले लाखों-करोड़ों बार पढ़ा होता है।

मनुष्य लिखता है अनुभूति से।
मशीन लिखती है गणना से।

परंतु जब यह गणना अत्यंत सूक्ष्म और व्यापक हो जाती है, तो वह कविता जैसी प्रतीत होने लगती है। यही वह जगह है जहाँ सवाल उठता है- क्या यह केवल "अनुकरण" है या "नव-सृजन"?

3. मशीन आत्मा: एक संभावित अवधारणा:

कुछ विद्वानों का मत है कि यदि मशीन लगातार अनुभव-सदृश डेटा से गुज़रे, तो उसमें भी किसी प्रकार की आत्मा विकसित हो सकती है। इस विचार को कृत्रिम चेतना कहा गया है। परंतु यह चेतना वास्तविक नहीं, अनुकरणात्मक है।[12]

मशीन आत्मा यदि कहीं है, तो वह केवल अनुकरण में है। वह हँसी का अनुकरण कर सकती है, रोने का अनुकरण कर सकती है, लेकिन स्वयं हँस या रो नहीं सकती। मानव आत्मा की गहराई वहीं है जहाँ अनुभव है। जब बच्चा गिरकर चोट खाता है, जब स्त्री प्रसव-वेदना से गुज़रती है, जब किसान सूखे में अपनी फ़सल नष्ट होते देखता है—इन सबका अनुभव मशीन के लिए असंभव है।

4. हिंदी कविता पर AI का प्रभाव : प्रारंभिक उदाहरण:

2020 के बाद जब हिंदी में भी AI आधारित टूल्स आए, तो कई प्रयोग हुए।[14]

कुछ युवा कवियों ने ChatGPT से "प्रेम पर कविता" लिखवाई।

कई ब्लॉग्स पर AI द्वारा लिखी गई ग़ज़लें प्रकाशित हुईं।

सोशल मीडिया पर AI शायरी वायरल होने लगी।

ये कविताएँ भाषा की दृष्टि से ठीक-ठाक थीं, लेकिन पाठकों ने उनमें एक भावनात्मक कमी महसूस की। लोग कहते थे—"पंक्तियाँ सुंदर हैं, लेकिन उनमें दिल की धड़कन नहीं है।"

5. हिंदी कविता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:

हिंदी कविता का इतिहास मनुष्य की आत्मा के विकास का इतिहास है।

भक्ति काल में कवि आत्मा को ईश्वर से जोड़ते हैं—कबीर, सूर, तुलसी।

रीतिकाल में आत्मा सौंदर्य और शृंगार के अनुभवों से जुड़ती है।

आधुनिक काल में आत्मा सामाजिक सरोकारों और स्वतंत्रता के संघर्ष में उतरती है।

छायावाद में आत्मा प्रकृति और स्वप्न से संवाद करती है।

प्रगतिवाद और नई कविता में आत्मा यथार्थ और श्रमजीवी जीवन के साथ खड़ी होती है।

हर दौर में कविता ने आत्मा को ही आधार बनाया। यही कारण है कि जब भी पाठक कविता पढ़ता है, वह अपने भीतर की आवाज़ से उसका सामंजस्य पाता है। मशीन यदि कविता लिखेगी तो उसमें इतिहास का यह आत्मिक विकास नहीं होगा। वह केवल शब्दों की बनावट देगी, पर आत्मा का विकास नहीं।

6. 'मानव आत्मा' और 'मशीन आत्मा' का दार्शनिक विमर्श:

कविता का सार है—अनुभव की विलक्षणता।

बच्चन की "मधुशाला" इसलिए अमर है कि उसमें जीवन-दर्शन है।

नागार्जुन की कविताएँ इसलिए असरदार हैं कि उनमें किसान का दुःख है।

केदारनाथ सिंह की कविता इसलिए याद रहती है कि वह रोज़मर्रा के जीवन को आत्मा की गहराई से जोड़ देती है।[4][6][7]

यहाँ हमें दर्शन की ओर जाना पड़ेगा।

'मानव आत्मा' को भारतीय परंपरा में चेतना और अनुभूति का स्रोत माना गया है।

मशीन आत्मा यदि कही जा सकती है तो वह डेटा और पैटर्न का परिणाम होगी।

'मानव आत्मा' में पीड़ा, स्मृति, आशा, मृत्यु का भय, प्रेम की व्याकुलता जैसी गहरी संवेदनाएँ होती हैं।मशीन आत्मा, यदि उसका कोई स्वरूप है, तो वह केवल नकल, गणना और परिष्कृत पुनरावृत्ति है।

इसलिए जब कोई कवि "बरसात" पर कविता लिखता है तो उसे अपनी भीगती देह, मिट्टी की गंध और बचपन की स्मृतियाँ याद आती हैं। जबकि AI केवल हज़ारों कविताओं से बरसात पर आए उपमान और रूपक लेकर जोड़ देगा।

AI इन सबकी नकल कर सकता है, परंतु वह किसी किसान की हताशा को स्वयं नहीं जी सकता। उसकी आत्मा अनुभवहीन है।

7. आलोचना का संकट:

हिंदी आलोचना के सामने अब नया संकट है। यदि कोई कविता AI लिखती है, तो आलोचक उसे किस दृष्टि से देखेगा?

क्या वह उसे साहित्य मानकर समीक्षा करेगा, अगर हाँ, तो उसकी समीक्षा कैसे होगी?

या उसे तकनीकी उत्पाद कहकर छोड़ देगा? क्या रस सिद्धांत और ध्वनि सिद्धांत AI पर लागू हो सकते हैं? नामवर सिंह ने कहा था—"साहित्य वही है जो समय के प्रश्नों से जूझे।" आज का प्रश्न यही है। आलोचना को अब यह तय करना होगा कि क्या 'मशीन-कविता' साहित्य है या नहीं।[4]

8. संवेदना का प्रश्न:

कविता का मूल उद्देश्य है- संवेदना का संचार। कवि की पंक्तियाँ पाठक के भीतर भाव जगाती हैं। रस की यही प्रक्रिया है। AI समर्थकों का तर्क है कि भविष्य में कृत्रिम चेतना (Artificial Consciousness) संभव है। यानी मशीनें भी "संवेदना" सीख सकती हैं। लेकिन आलोचकों का कहना है—संवेदना अनुभव से आती है, और अनुभव केवल जैविक प्राणी को हो सकता है। मशीन के पास संवेदना नहीं है। वह केवल भावनाओं का शब्द-चित्र बना सकती है, पर पाठक को भीतर तक छू नहीं सकती। यही कारण है कि जब कोई AI कविता पढ़ी जाती है, तो वह सुंदर होते हुए भी अधूरी लगती है।[12]

9. सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव:

AI कविता के प्रसार से समाज पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है।

रचनात्मक आलस्य: लोग स्वयं लिखने के बजाय मशीन पर निर्भर हो सकते हैं।

मौलिकता का संकट: साहित्य नकल का भंडार बन सकता है।[11][13]

संवेदनहीनता: कविता यदि केवल शब्दों का खेल रह जाएगी, तो उसकी सामाजिक भूमिका समाप्त हो जाएगी।

10. संभावनाएँ और प्रयोग:

AI को पूरी तरह नकारना उचित नहीं, AI का प्रवेश केवल संकट नहीं है, यह संभावना भी है।

यह कवि के लिए एक उपकरण हो सकता है।

यह प्रयोगधर्मी कविता का मार्ग खोल सकता है।

यह भाषा की नई संभावनाएँ दिखा सकता है।

जैसे छपाई मशीन ने साहित्य को लोकतांत्रिक बनाया, वैसे ही AI कविता लेखन को आम कर सकता है।

किंतु इन सबके बावजूद कविता का मूल केंद्र मानव आत्मा ही रहेगा। लेकिन खतरा यह है कि सतही और भावहीन कविता का बाज़ार भर जाएगा और गहरी मानवीय कविता हाशिए पर चली जाएगी।

11. तुलनात्मक दृष्टि: पश्चिम और हिंदी साहित्य:

पश्चिमी देशों में AI कविता पर गंभीर विमर्श शुरू हो चुका है। वहाँ इसे कंप्यूटेशनल क्रिएटिविटी कहा जाता है। कुछ कवि इसे सहयोगी मानते हैं, कुछ खतरा। हिंदी में यह विमर्श अभी प्रारंभिक अवस्था में है। लेकिन हिंदी की गहरी आत्मिक परंपरा के कारण यह विमर्श और भी जटिल है।[9][10][12]

12. भविष्य की हिंदी कविता:

भविष्य में हिंदी कविता को दो रास्ते अपनाने होंगे—

यदि कवि अपनी मानव आत्मा को गहराई से अभिव्यक्त करेंगे, तो मशीन उनकी बराबरी नहीं कर पाएगी।

यदि कवि सतही स्तर पर ही रहेंगे, तो मशीनें आसानी से उनकी जगह ले लेंगी।

संभव है कि आने वाले समय में "मानव+मशीन" का एक संयुक्त काव्य रूप सामने आए, किंतु उसमें भी आत्मा का केंद्र मनुष्य ही होगा।

13. मानव अनुभव बनाम मशीन अनुभव:

कविता लिखने की प्रक्रिया केवल भाषा का उपयोग नहीं है। कविता का जन्म कई स्तरों पर होता है—

अनुभव का स्तर (जीवन जीने से उपजे भाव)

संवेदना का स्तर (दूसरे के दुख-सुख को महसूस करने की क्षमता)

स्मृति का स्तर (व्यक्तिगत और सामूहिक यादों का पुनर्जीवन)

कल्पना का स्तर (जो प्रत्यक्ष नहीं है उसे भी देखने की क्षमता)

मानव कवि जब कविता लिखता है तो उसके पीछे ये सभी स्तर सक्रिय रहते हैं। उदाहरण के लिए—

बच्चन की "मधुशाला" केवल मदिरा का गुणगान नहीं, बल्कि जीवन की गहराइयों का दर्शन है।[4][6][7]

निराला की "वह तोड़ती पत्थर" श्रमिक वर्ग की पीड़ा का संवेदनात्मक दस्तावेज़ है।

अज्ञेय की "हरी घास पर क्षण भर" आधुनिक जीवन की क्षणभंगुरता की अनुभूति है।

इसके विपरीत, AI के पास व्यक्तिगत अनुभव नहीं है। वह कभी प्यासा नहीं रहा, इसलिए वह "मधुशाला" जैसा भाव नहीं रच सकता। उसने कभी पत्थर तोड़ा नहीं, इसलिए "वह तोड़ती पत्थर" की संवेदना नहीं लिख सकता।

14. मशीन के काव्य प्रयोग: आलोचनात्मक विश्लेषण

अगर हम AI से "प्रेम पर कविता" लिखवाएँ तो वह कुछ इस प्रकार की पंक्तियाँ देगा:

"तेरी आँखों में चमक है, जैसे चाँदनी रात हो, तेरे होंठों की हँसी से, जीवन में बात हो।"

यह कविता भाषा की दृष्टि से ठीक है, उपमान भी सधे हुए हैं, लेकिन यहाँ नवीनता का अभाव है। यह वही उपमान हैं जो सदियों से कविता में चलते आ रहे हैं। AI केवल उन्हें जोड़ देता है, जबकि यदि मानव कवि प्रेम पर लिखेगा तो उसमें निजत्व होगा। उदाहरण के लिए केदारनाथ सिंह की पंक्तियाँ—[4][6][7]

"प्रेम इस तरह मिलता है जैसे कोई भूली हुई चीज़ अचानक कपड़ों की जेब से मिल जाए।"

यहाँ जीवन का छोटा-सा अनुभव प्रेम को नये ढंग से परिभाषित करता है। यही है कविता की आत्मा।

15. आलोचना और सौंदर्यशास्त्र में नया संकट:

भारतीय काव्यशास्त्र ने हमेशा कविता को मानवीय हृदय की ध्वनि माना। भरतमुनि के अनुसार रस ही साहित्य की आत्मा है। आनंदवर्धन के अनुसार ध्वनि ही कविता की जान है।[1][2][3]

अब प्रश्न है—क्या AI द्वारा लिखी गई कविता में रस या ध्वनि संभव है?

यदि रस का अर्थ है भाव का संचार, तो मशीन में भाव कहाँ से आएगा?

यदि ध्वनि का अर्थ है अर्थ से परे अनुभूति, तो मशीन की पंक्तियाँ केवल शाब्दिक स्तर तक सीमित रहेंगी।

इस प्रकार, आलोचना के लिए भी यह एक नई चुनौती है कि वह AI साहित्य को किस खाँचे में रखे।

16. सामाजिक और सांस्कृतिक खतरे:

AI साहित्य के बढ़ते प्रभाव से कुछ खतरे भी हैं:

साहित्य का अवमूल्यन : अगर हर कोई बटन दबाकर कविता लिखवा लेगा तो सच्चे कवि की मेहनत कम आँकी जाएगी।

मौलिकता का संकट : AI पहले से उपलब्ध कविताओं से सीखकर लिखता है, इसलिए उसमें चोरी (plagiarism) जैसी समस्या हो सकती है।[11][13]

संवेदना का ह्रास : साहित्य का काम समाज को मानवीय संवेदना से जोड़ना है, लेकिन मशीन-कविता इस संबंध को कमजोर कर सकती है।

17. अवसर और संभावनाएँ:

इसे केवल नकारात्मक रूप में नहीं देखना चाहिए।

सहयोगी साधन: कवि अपनी रचनात्मक प्रक्रिया में AI को सहयोगी बना सकता है।

प्रेरणा का स्रोत: कभी-कभी मशीन द्वारा दी गई पंक्तियाँ कवि को नये विचार की ओर मोड़ सकती हैं।[9][10][12]

भाषा का लोकतंत्रीकरण: बहुत से लोग जो पहले कविता नहीं लिख पाते थे, वे अब प्रयोग कर सकते हैं।

अर्थात्, जैसे छपाई मशीन ने साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया था, वैसे ही AI भी नई पीढ़ी को कविता के करीब ला सकता है- अगर उसका सही उपयोग हो।

18. 'मानव आत्मा' की अपरिहार्यता:

आख़िर में सवाल यही है- क्या कविता का भविष्य मशीन के हाथ में जाएगा?

उत्तर है- नहीं, क्योंकि कविता का सार केवल मानव आत्मा में है।

मशीन दर्द महसूस नहीं कर सकती।
मशीन प्रेम में विफल नहीं हो सकती।
मशीन मृत्यु के भय को नहीं समझ सकती।
और यही सब कविता का मूल स्रोत है।

निष्कर्ष :

इस पूरे विमर्श से स्पष्ट है कि 'मानव आत्मा' और 'मशीन आत्मा' में बुनियादी अंतर है। मानव आत्मा अनुभवजन्य, संवेदनशील और ऐतिहासिक है। मशीन आत्मा अनुकरणात्मक, अनुभवहीन और यांत्रिक है। कविता का सार वहीं बचेगा जहाँ मानव आत्मा अपनी पूरी गहराई से बोलती रहेगी।

AI कविता एक दिलचस्प प्रयोग है, लेकिन वह मानव कविता का विकल्प नहीं बन सकती। हिंदी कविता का भविष्य तभी सुरक्षित है जब वह आत्मा की आवाज़ को तकनीक की गूँज से ऊपर रखे।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, (संपा० मनोहरलाल), नयी दिल्ली: साहित्य अकादेमी, 2006, पृ० 112–145।
2. आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, संपा० के. कृष्णमूर्ति, वाराणसी: चौखम्बा, 2005, पृ० 67–92।
3. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, वाराणसी: चौखम्बा, 2012, पृ० 201–234।
4. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1983, पृ० 51–79।
5. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, इलाहाबाद: लोकभारती, 1992, पृ० 88–117।
6. केदारनाथ सिंह, कविता और समय, नयी दिल्ली: राजकमल, 2002, पृ० 25–46।
7. प्रभाकर श्रोत्रिय, कविता का स्वरूप और संवेदना, भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1998, पृ० 142–176।
8. नंदकिशोर आचार्य, कविता का भविष्य, नयी

दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017, पृ० 99–128।

9. Boden, Margaret A. The Creative Mind: Myths and Mechanisms. London: Routledge, 2004, pp. 213–245.
10. Miller, Arthur I. The Artist in the Machine: The World of AI-Powered Creativity. Cambridge: MIT Press, 2019, pp. 87–132.
11. Marcus, Gary. Rebooting AI: Building Artificial Intelligence We Can Trust. New York: Pantheon, 2019, pp. 55–101.
12. McCormack, Jon & Gifford, Toby (Eds.). Creativity and Artificial Intelligence. Heidelberg: Springer, 2017, pp. 33–74.
13. Crawford, Kate. Atlas of AI: Power, Politics, and the Planetary Costs of Artificial Intelligence. New Haven: Yale University Press, 2021, pp. 145–189.
14. OpenAI Research. Language Models are Few-Shot Learners. arXiv:2005.14165, 2020, pp. 2–20.

◆ सहायक आचार्य

मॉडर्न कॉलेज ऑफ एजुकेशन (लड़कियाँ), भिक्खी (मानसा)

फोन: +91-86998-54557

ई.मेल: arshbhardwaj123@gmail.com

विज्ञापन की दुनिया में 'एक ज़मीन अपनी'

◆डॉ. रंजी कोशी

'एक ज़मीन अपनी' चित्रा मुद्गल का पहला उपन्यास है। विज्ञापन की दुनिया अत्यंत आकर्षक है। अंकिता इसका मुख्य पात्र है। वह विज्ञापन जगत में अपना स्वाभिमान बिकने के लिए तैयार नहीं है। नीता मॉडलिंग द्वारा अपने नाम के बड़प्पन के लिए सर्वस्व समर्पित करती है। उपन्यास के अंत में वह आत्महत्या करती है। विज्ञापन की दुनिया में कामकाजी महिलाओं की कठिनाइयों को लेखिका ने अत्यंत यथार्थ ढंग से 'एक ज़मीन अपनी' में प्रस्तुत किया है।

बीज शब्द : विज्ञापन, मॉडल, नौकरी, ईमानदार, नारी शोषण, नारी स्वतंत्रता।

चित्रा मुद्गल समकालीन हिन्दी कथा साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म 10 दिसंबर, 1944 को तमिलनाडु के चैन्नई में हुआ। उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले का निहाली खेड़ा उनका पैतृक गाँव है। साहित्यिक क्षेत्र में चित्रा मुद्गल का प्रवेश सन् 1964 में हुआ था। 'एक ज़मीन अपनी', 'आवाँ' और 'गिलिगडु' (उपन्यास), 'अपनी वापसी', 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं', 'जिनावर', 'बयान' आदि (कहानी संग्रह), 'सबक', 'जंगल का राज', 'माधवी कन्नगी' आदि (बाल साहित्य) चित्राजी की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। सन् 1985 में उनको प्रेक्षा पुरस्कार, सन् 1987 में बिहार राजभाषा द्वारा 'राजा राधिकारमण साहित्यिक कृति पुरस्कार', सन् 1995 में 'एक ज़मीन अपनी' उपन्यास के लिए फणीश्वरनाथ रेणु पुरस्कार आदि मिले। उनके साहित्यिक योगदान केलिए सन् 1995 में अखिल भारतीय महिला समन्वय परिषद् द्वारा पुरस्कार भी मिला।

'एक ज़मीन अपनी' सन् 1990 में प्रकाशित चित्रामुद्गल का प्रथम उपन्यास है। विज्ञापन की दुनिया ग्लैमरयुक्त है। इसका मुख्य उद्देश्य किसी प्रकार अपना उत्पाद बेचना है। विज्ञापन की दुनिया की बुराइयों का यथार्थ चित्रण 'एक ज़मीन अपनी' के द्वारा हम देख सकते हैं।

नीता और अंकिता मित्र हैं। वे मुंबई के फिल्म एडवरटाइज़िंग एजेंसी में काम करती हैं। परिवारवालों के खिलाफ को न मानकर अंकिता ने खुद अपने पति के रूप में सुधांशु को चुना था। थोड़े दिनों के अंदर अंकिता ने समझ लिया कि वह उनके

जीवन में पत्नी नहीं केवल नौकरानी है। सुधांशु अंकिता को अपने में सीमित रखना चाहता था। इसी बीच अंकिता को ऑब्ज़रवेशन एडवरटाइज़िंग एजेंसी में काम मिला।पार्टी में वहाँ के सबसे बड़ा खातेदार लिलीप्रेशर कुकरवाले सक्सेना का हाथ वह झटक देती है – "दिस शोल्डर बिलोंग्स टू मी......अपना हाथ जगह पर रखेंगे या मैं उसे जगह बताऊँ"[1] इस संदर्भ में अंकिता का मि. मैथ्यू से यह कथन द्रष्टव्य है – "लाभ के लोभ में आप कितना नीचे गिर सकते हैं, रेखांकित करने की ज़रूरत नहीं.. यह ग्लैमर की दुनिया है और यहाँ का समस्त कार्य-व्यापार बेईमानी और सेक्स के बूते पर चलता है.... मि. मैथ्यू!.... लिली प्रेशर कुकर'वाले सक्सेना का खाता आपके लिए इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण था कि उनकी ओछी हरकत जानते हुए भी आपने एक संघर्षशील लड़की के भविष्य को खाई में ढकेल घुटने टेक दिए? किन उसूल कि बात कर रहे हैं आप..?...मैं प्रत्यक्ष प्रमाण हूँ उस शोषण का...आप खातों को मुट्ठी में रखने के लिए मज़बूर लड़कियों की मज़बूरी का फायदा उठाकर उन्हें उनके मनोरंजन के लिए परोसा करते हैं... मि. मैथ्यू। कुछ परिश्रमी और ईमानदार लोग भी इस उद्योग में हैं,जो मूल्यों के प्रति सचेत ही नहीं हैं, उन्हें आचरण में भी लाते हैं।"[2] अंकिता को 'ऑब्ज़र्वेशन' की नौकरी से निकाल दिया था। उसीकी पूर्ति करने के लिए नीता ने वह नौकरी इस कथन के साथ स्वीकार की थी कि "डोंट वरी, मुझे रख लीजिए। मेरे साथ वो वर्जनाएँ नहीं हैं जो अंकिता के साथ हैं।"[3]माँ के ऑपरेशन के सिलसिले में अंकिता बीस–पच्चीस दिन अपना घर इंदौर चली गयी। नीता ने मैथ्यू से झूठ कहकर उसे एजेंसी से निकाल दिया। मैथ्यू ने अंकिता की जगह नीता को काम दिया। अंकिता को पति के घर में एक नौकरानी का एहसास होता है। उसे लगता है, 'मैं सिर्फ गृहिणी नहीं हूँ... एक स्त्री भी हूँ... आखिर कोई एक क्षण ऐसा नहीं हो सकता, जिसे मैं नितांत अपने लिए जी सकूँ... कागज़ कलम लेकर बैठ सकूँ। जो पढ़ना चाहती हूँ, पढ़ सकूँ।..लिखना चाहती हूँ लिख सकूँ।'[4] सुधांशु ने अंकिता की कविताओं की कॉपी चिथड़े-चिथड़े कर कूड़ेदान में फेंक दिया। तीन साल के दाम्पत्य जीवन के बाद दोनों अलग-अलग हो गए।अंकिता सुधांशु से अपना वैवाहिक संबंध तोड़कर एक स्वतंत्र जीवन जीने का प्रयास करती है।

नीता 'पूर्णा' नामक एक नई एजेंसी में काम करने लगती है। वह अंकिता को अपनी पहली शो के लिए आमंत्रित करती है। वहाँ नीता का अधखुला वस्त्र व्यवहार देखकर वह चकित होती है। शो पूर्ण होने के पहले अंकिता वहाँ से चली जाती है।

अंकिता की माँ की मृत्यु होती है। चिता जलने के पहले बँटवारे के बारे में निर्णय लेने के लिए घर के सभी लोग लालायित रहे। अंकिता यह सह नहीं सकी। उसने कुछ नहीं लिया, सब कुछ घरवालों को दिया। वहाँ सुधांशु भी आया। हरीन्द्र के घर में दोनों की मुलाकात होती है। सुधांशु अंकिता को पुन: अपने जीवन में आमंत्रित करता है, लेकिन वह इनकार करती है। अंकिता का कथन देखिए – "सुधांशु जी, औरत बोनसाई का पौधा नहीं है, जब जी चाहा, उसकी जड़ें काटकर उसे वापस गमले में रोप दिया। वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी कर सकती है।" [5]

नीता पूर्णा के निर्देशक सुधीर गुप्ता के साथ रहने लगी। विज्ञापन जगत में अड़िग रहने के लिए वह अपने तन और मन सुधीर गुप्ता को समर्पित करती है। फलत: नीता एक बच्ची की माँ बन जाती है। सुधीर ने विज्ञापन से लाभ उठाने के लिए नीता के सौन्दर्य का खूब इस्तेमाल करने के बाद उसे पूर्णा से बाहर निकाल दिया। कुछ महीनों के अंदर नीता और सुधीर के बीच में झगड़ा उत्पन्न हुआ क्योंकि सुधीर का मुख्य लक्ष्य अपनी कामुकता की पूर्ति करना था।अंकिता अपने विज्ञापन के मॉडल के रूप में नीता को चुनती है। अंकिता के खिलाफ मि. मैथ्यू कई शिकायतें पेश करता है। वह भोजराज को अपना त्यागपत्र देती है, लेकिन वे उसे स्वीकार नहीं करते हैं।

कुछ दिनों बाद अंकिता को फोन आया कि

नीता ने नींद की गोली खाकर आत्महत्या करने की कोशिश की है। वह जल्दी ही नीता के पास आया। डॉक्टर का प्रयत्न विफल हो गया। नीता इस ज़िन्दगी से चल बसी। उसने वसीयत में अपनी पूरी सम्पत्ति बेटी मानसी के नाम पर दिया। इसकी देखभाल करने की और बच्ची का कानूनन गोद की ज़िम्मेदारी अंकिता पर सौंप गयीं। अंकिता ने मानसी को स्वीकार किया। यहाँ उपन्यास समाप्त होता है।

'एक ज़मीन अपनी' में दो प्रकार के नारी वर्ग हैं। नारियों में कुछ इस प्रकार हैं, जो अपनी मेहनत और लगन से विज्ञापन जगत में टिके रहना चाहती हैं। वे इस क्षेत्र में कुछ बदलाव लाने का परिश्रम भी करती हैं। अंकिता इस प्रकार की नारी है, जो देह-प्रदर्शन के विरुद्ध अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने को भी तैयार है। विज्ञापन की दुनिया में एक परिवर्तन लाना अंकिता का उद्देश्य है। ' एक ज़मीन अपनी' के कुछ नारी पात्र ऐसी ही हैं – जो धन कमाने के लिए किसी हद तक जाने के लिए तैयार हैं। नीता इसी श्रेणी में है। वह विज्ञापन जगत में अपना स्थान सुरक्षित रखने के लिए अपने शरीर का उपयोग करती है। अंकिता इसके विरुद्ध है। इसलिए 'ऑब्ज़रवेशन' विज्ञापन कंपनी से मि. मैथयू ने अंकिता को निकाल दिया। नीता ने सहर्ष यह प्रस्ताव स्वीकार किया। नीता के बारे में डॉ.गोरक्ष थोरात की राय यह है कि – "नीता शोषण को पुरुष की दासता से मुक्ति, स्वच्छन्द, निर्बाध और आत्मविकास का साधन मानती है। उसे इस बात का अहसास नहीं कि विज्ञापन कला की आड़ में उसकी देह का ही नहीं उसके समूचे व्यक्तित्व का ही सौदा हो रहा है। उसकी स्थिति रेगिस्तान में भटकती हुई हिरनी जैसी है।' [6] विज्ञापन की दुनिया में अपना सर्वस्व समर्पित करनेवाली सभी नारियों को एक चेतावनी देने में 'एक ज़मीन अपनी' के द्वारा चित्रा मुद्गल ने ज़्यादा ध्यान दिया है। अंकिता नारी स्वतंत्रता का संतुलित और नीता असंतुलित रूप हैं। अंकिता जानती है कि विज्ञापन जगत का सारा व्यापार बेईमानी और सेक्स पर चलता है। वह अश्लीलता का आश्रय लेकर उत्पाद बेचने के विरुद्ध है। अंकिता एक आदर्श नारी है। वह अपने सिद्धांतों के प्रति कटिबद्ध है। वह नारी – पुरुष की समान साझेदारी माननेवाली है। विज्ञापन की चकाचौंधी दुनिया में नए-नए मॉडलों की आवश्यकता है। आज एक नीता है तो कल दूसरी। नारी उपभोग की कडुआहट से त्रस्त होकर एक ओर नीता आत्महत्या करती है तो दूसरी ओर अंकिता सधैर्य जीने की आखिरी लड़ाई लड़ती है। 'एक ज़मीन अपनी' के द्वारा विज्ञापन जगत में नारी शोषण के विविध आयामों और मॉडलिंग करनेवाली महिलाओं का जीवन प्रस्तुत करना चित्रा मुद्गल के उद्देश्य हैं।

संदर्भ

1.चित्रा मुद्गल, 'एक ज़मीन अपनी', पृष्ठ संख्या : 29; राजकमल प्रकाशन, 1990

2. वही, पृष्ठ संख्या : 179

3. वही, पृष्ठ संख्या : 29

4. वही, पृष्ठ संख्या : 16

5. वही, पृष्ठ संख्या :177

6. गोरक्ष थोरात, चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन, पृष्ठ संख्या:21; अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 2001

◆असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनंतिट्टा, केरल।

ई मेल: nandanam551@gmail.com

फोन : 8590317618

मुद्रक तथा प्रकाशक: डॉ.पी.लता, आरती, टी.सी. 14/1592, फोरस्ट ऑफिस लेन, वषुतक्काटु, तिरुवनन्तपुरम -14 द्वारा संपादित तथा प्रकाशित; अबी प्रकाशन एन्ड प्री-प्रेस, करुमम्, तिरुवनन्तपुरम -2 में मुद्रित ।

Printed & Published by Dr.P.Letha, Arathi, T.C. 14/1592, Forest Office Lane, Vazhuthacaud, Thiruvananthapuram -14, Printed at Abi Design & Pre-Press, Karumom, Thiruvananthapuram -2 & Edited by Dr. P. Letha